



सर्वाधिकम् सुखित

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

( ५७ )

# गुणस्थानदर्पण

लेखक—

अध्यानमयोगी न्यायतीर्थ पूजा श्री मलोहर जी दर्शी  
“श्रीमत्सहजानन्द” अद्वितीय

प्रकाशक

मंत्री श्रा सहजानन्द शास्त्रमाला  
२०१ पुलिस स्ट्रीट मेरठ सदर (उत्तर प्रदेश)

प्रति रुपया कमीशार्न व १५ प्रति  
खरीदने पर १ प्रति  
चिना मूल्य । ] न्योडामर  
न् १९५५ [ १२ अप्रै

# श्री महजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तकों की शुभ नामावली निम्न प्रकार हैः—

१	श्रीमान् लाल महाबीर प्रसाद जी जैन वैर्कर्स सदर मेरठ	३००१)
२	“ मित्रसैन जी नाहरसिंह जी जैन मुजफ्फरनगर १००१)	
३	“ प्रेमचन्द्र जी औमधकाश जी निवार वर्क्स मेरठ १००१)	
४	“ सलेखचन्द्र जी लाल चन्द्र जी मुजफ्फरनगर ११०१)	
५	“ कृष्णचन्द्र जी जैन रईस देहरादून ११०१)	
६	“ दामचन्द्र जी जैन रईस देहरादून १००१)	
७	“ वारूमल जी प्रेमचन्द्र जो जैन मंसूरी १००१)	
८	“ वावूराम जी मुरारीलाल जी जैन ज्वालापुर १००१)	
९	“ केवलराम जो उप्रसैन जी जगाधरी १००१)	
१०	“ गैंडामल जी दगड़साह जी जैन सनावद १००१)	
११	“ मुकन्दलाल जो गुलशनराय जैन नईमंडोमु० १००१)	
१२	“ कैलाशचन्द्र जी जैन देहरादून १००१)	
१३*	“ शीतल प्रसाद जी जैन मेरठ सदर १००१)	
१४*	“ सुखबीरसिंह जी हंमचन्द्र जी सर्टफ बड़ोत १००१)	
१५*	“ वावूराम जी अकलंक प्रसाद जी जैन रईस तिस्सा १००१)	
१६*	“ जगकुमार बीरसैन जी सर्टफ मेरठ १०००)	
१७*	“ फूलचन्द्र वैजनाथ जी मुजफ्फरनगर १०००)	
१८*	“ सेठमोहनलालजी ताराचन्द्र जी बहजात्या जयपुर १००१)	
१९*	“ सेठ भवरीलाल जी जैन कोडरमा १०००)	
२०*	“ वावूदयाराम जी जैन S. D. O. मेरठ सदर १०००)	
२१*	“ मुश्तालाल यादवराय जी मेरठ सदर १०००)	
२२*	“ जिनेश्वरदास जी श्रीपाल जी जैन शिमला १००१)	
२३*	“ बनवारीलाल जी निरंजनलाल जी शिमला १००१)	

टेट—जिनके कुछ रूपये आगये हैं उनके पहले यह निशान अंकित है।  
 × इनके रूपये इन्हीं के पास हैं। और सबके रु० आ गये हैं।

## ❀ यत्क्रिच्चित् ❀

ग्रिय पाठक वृन्द ! आपके मामने यह पुस्तक प्रकाशित करते हुए मुझे बड़ा हर्ष होरहा है । सन् १९५५ के इत वर्षायोग में अध्यात्मयोगी न्यायतोर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी “श्रीमत्सहजानन्द,, महाराजसे मुझे जीवस्थान चंच्चि व अध्यात्मचर्चा अध्ययन करनेका शुभ अवग्रह मिला । मुझे इस ज्ञानोपयोगसे वह विशुद्ध आनन्द ग्रास हुआ जो जीवनमें कभी ग्रास नहीं हुआ । मैंने महाराज श्री से निवेदन किया कि मैं गुणस्थानोंके सम्बन्धमें कुछ विशेष परिचय करना चाहता हूँ अतः कापीमें प्रत्येक गुणस्थानोंके विषयमें कुछ लिखनेकी करुणा कीजियजो अधिक विस्तृतभी न हो । तब आपने हमपर करुणा करकेसब गुणस्थानोंके विषयने दरिचयात्मक लेख लिखे । उनको एक इस पुस्तकके रूपमें प्रकाशित किया जा रहा है । इस कृपा के लिये हम महाराजश्रीके बहुत आभारी हैं ।

हम आशा ही नहीं प्रत्युत पूर्ण विश्वास करते हैं कि इस पुस्तक, जो ही नहीं किन्तु महाराजश्री द्वारा विरचित छोटी बड़ी सभी पुस्तकों अथवा उनके ग्रन्थबनोंकी पुस्तकोंको पढ़कर पाठक मित्र अवश्य सत्य जागृति और आनन्द पावेगे ।

अस्मोमुत्पिपासु

उपाध्यक्ष व प्रधानदृस्त्री  
श्री सद्वजानन्द शास्त्रमाला

महावीरप्रसाद जैन बेंडर्स  
मेरठ सदर

नवम्बर सन् १९५५

# आत्मगैर्ण

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णा  
“श्रीमत्सहजानन्द” महाराज द्वारा विरचित

—०★०—

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आत्म राम ॥ टेका ॥

१

मैं वह हूँ जो हैं भगवान् । जो मैं हूँ वह हैं भगवान् ॥  
अन्तर यही ऊरी जान । वे विराग यहूँ रागवितान ॥

२

मम स्वरूप है सिद्ध समान । अभितशक्तिसुखज्ञाननिधान ॥  
कन्तु आशवश खोया ज्ञान । बना भिखारी निपट अजान ॥

३

सुख-दुख दाता कोइ न आन । मोह राग रुष दुखकी खान ॥  
निजको निज परको पर जान । फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥

४

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम । विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ॥  
राग त्यागि पहुँचूँ निजधाम । आकुलताका फिर क्या काम ॥

५

होता रवयं जगत् परिणाम । मैं जगका करता क्या काम ॥  
दूर! हटो परकृत परिणाम । ‘सहजानन्द’ रहूँ अभिराम ॥

॥ ॐ नमः सिद्धम् ॥

## गुणस्थानदर्पण

गुणस्थानेषु सर्वेषु गतानामाश्रयं शिवम् ।

अभिन्नं सहजं सिद्धं चित्स्वभावं नमाम्यहम् ॥१॥

यह जगत् -- अनंतानंतं जीव, अनंतानंतं पुद्गल  
एक धर्मद्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य असं-  
ख्यात कालद्रव्य इन सब अनंतानंतं पदार्थोंका समूह है ।

पदार्थ वह होता है जो अनादि, अनंत, स्वतःसिद्ध  
है व पर से अत्यन्त भिन्न और अपनेमें अभिन्न है । पदार्थ  
अपने ही द्रव्य, प्रदेश, परिणति और शक्तिसे है, किसी  
भी अन्यके द्रव्य, प्रदेश, परिणति शक्तिसे नहीं है । पदार्थ  
प्रति समय परिणमन करते रहते हैं । जो परिणमन है  
उसे पर्याय कहते हैं, जिस शक्तिका परिणमन है उसे गुण  
कहते हैं और एकाश्चित् सर्व गुणोंका औ अभिन्न आधार  
है उसे पदार्थ या द्रव्य कहते हैं उक्त सब पदार्थोंमें ये  
लक्षण निर्विधाद हैं ।

इन सब पदार्थोंमें जीव भी द्रव्य है और वे अनंता-  
नंत हैं । प्रत्येक जीव अनंतशक्त्यात्मक है, शक्तिको गुण

कहते हैं। यहां यह निश्चय करना चाहिये कि प्रत्येक जीव में अनन्त गुण हैं, उन सब गुणों प्रधान गुण यहां ३ विवक्षित हैं—दर्शन ज्ञान और चारित्र। इनमें से ज्ञान गुणका विकार नहीं होता किन्तु ज्ञानका कम होना अधिक होना पूर्ण होना ये दशायें होती हैं। ज्ञानके कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन अप्रस्तुत प्रकार मिथ्या—त्वं अनंतानुबंधीके साहचर्यसे उत्पचारसे कहे गये हैं। विकार तो दर्शन और चारित्र गुणमें होता है और वही पश्चात विकार रहित भी शुद्ध परिणमता है।

दर्शन शुद्धा—प्रतीतिको कहते हैं और चारित्र परिणमन में गत होनेको कहते हैं। जीवने दर्शन, चारित्रका तीव्र विकार भी होता है, मंदविकार भी होता है। कभी दर्शनमें शुद्ध परिणमन होता और चारित्रमां विशेष विकार होता है व मंद विकार होता है कहीं दर्शन चारित्र दोनोंका शुद्ध परिणमन हो जाता है आदि विशेष तात्रोंसे इन गुणोंके विविध परिमणमन हो जाते हैं। इन गुणों इन सब परिणमनों को नानास्थानीय परिणमन कहते हैं, जिन्हें गुणस्थान शब्द से संज्ञित करते हैं।

ये गुणस्थान अनगिनते हैं, तथापि इनको समझनेके लिये इन परिणमनोंको किसी अपेक्षासे समस्त मावरोंका संग्रह करके १४ प्रकार वीतराग महर्षियोंने सं

ज्ञपरम्परा से बताये हैं। इन्हीं गुणस्थानोंके विषयसे सिद्धांतसे अपरिचित वन्धुओंको भी इसका परिज्ञान हा। इस भावना को साथ लेकर अपने उपयोगको दुरुपयोगता से बचानेके लिये यह बत्तन है। इसमें वे कठिनता अद्भुतव कर इस विषयसे विमुख न हो जाय इस कारण संक्षेपसे ही वर्णन किया जावेगा ।

### गुणस्थान

मोह और योगके निमित्तसे होनेवाली आत्मग्रहे दर्शन और चरित्र गुणकी अवस्थाओं को गुणस्थान कहते हैं। इन गुणस्थानोंमें कोई तो मोहके उदयसे होते हैं, कोई मोहके अपशम से होते हैं, कोई मोहके क्षयोपशम से और मोहके क्षय व कोई मोहकी अनपेक्षासे तथा कोई योगके सद्ग्राव से और कोई योगके अभाव से होता है इन सभी प्रकारों को निमित्त कहते हैं अतः कहीं निमित्त सद्ग्रावरूप है और कहीं निमित्त अभावरूप है। गुणस्थान १४ इस प्रकार है— १ मिथ्यात्व, २ सासादनसम्यक्त्व, ३ सम्यामिश्यत्व, ४ अविरत सम्यक्त्व, ५ देशविरत, ६ प्रमत्तविरत, ७ अप्रमत्तविरत, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्मसाम्पराय, ११ उपशान्तकषाय, १२ क्षीणकषाय, १३ सयोगकेवली, १४ अयोगकेवली। इनमें उपशामश्रेणी पर चढ़नेवाले साधुओंके परिणामोंका नाम

भी अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण सूच्चमसाम्पराय है और द्वयकश्चेष्टीपर चढ़नेवाले साधुओंके परिणामोंके नाम भी अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूच्चमसाम्पराय हैं । गुणस्थान का दूसरा नाम जीवसमाप्ति भी है जिसमें जीव भले प्रकार रहते हैं उन्हें जीवसमाप्ति कहते हैं, जीव गुणोंमें भावों में रहते हैं, वे गुणधृ हैं—१ औदयिक, औपशमिक, क्षयोपशमिक क्षायिक व परिणामिकाकर्मोंके उदयसे होनेवाले भाव को औदयिक भाव कहते हैं । कर्मोंके उपशमसे होने वाले भावको औपशमिक कहते हैं । कर्मोंके क्षयोपशमसे होने वाले भावको क्षयिकभाव कहते हैं । और कर्मोंके क्षय से होने वाले भावको क्षयिकभाव कहते हैं । जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय क्षयोपशमकी अपेक्षाके बिना उत्पन्न होता है उसभावको पारिणामिक कहते हैं ५ न भावों के प्राहर्चर्य से आत्मा की भी गुणसंज्ञा होती है । उक्त गुणस्थानों में ये भाव हैं ।

इन गुणस्थानोंके योगसे आत्माके पूर्ण नाम इस प्रकार होते हैं ।—१ मिथ्यादृष्टि, २ सासादनसम्यग्दृष्टि ३ सम्यग्मिश्यादृष्टि, ४ असंयतसम्यग्दृष्टि, ५ संयतासंयत, ६ प्रमत्संयत, ७ अप्रमत्संयत, अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक व अपूर्वकरणप्रविष्ट शुद्धिसंयत द्वयक, ९ अनिवृत्तिकरणवादरसाम्पराय, १० विष्टशुद्धिसंयत उपशमक व अनिवृत्ति-

वादरसाम्परायिक प्रविष्टशुद्धिसंयतक्षपक, सूच्चमसाम्परायिक प्रविष्ट शुद्धिसंयत उपशमक व सूच्चमसाम्परायिक प्रविष्ट शुद्धिसंयत क्षपक, ११ उपशान्तकषायवीतरागछद्वास्थ, १२ चीणकषायवीतरागछद्वास्थ, १२ सयोगकेवली, १४ अयोग-केवली ।

अब इन गुणस्थानोंका व गुणस्थानवर्ती आत्मावे के स्वरूपका क्रमशः विवरण करेंगे उनमें प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानको कहते हैं—

### मिथ्यात्व गुणस्थान

मिथ्यात्व प्रकृति नामक दर्शनमोहनीय कर्मके उदय से वस्तुस्वरूप के यथार्थ बद्धान न होनेको मिथ्यात्व कहते हैं । गिथ्यात्वके असंख्यात लोक प्रभाण भेद हैं तथापि कुछ समाज जातिकी अपेक्षासे वीतराग महर्षियों ने संग्रह करके ५ भेद कहेहैं— १ एकान्तिकमिथ्यात्व, २ सांशयिकमिथ्यात्व, ३ विपरीत मिथ्यात्व, ४ वैनयिक-मिथ्यात्व, ५ अज्ञानमिथ्यात्व ।

अनंतवर्मात्मक वस्तु के अन्य भावों को छोड़कर किसी भी धर्मकी (भावकी) श्रद्धा करना ऐकान्तिक-मिथ्यात्व है । वस्तुस्वरूपमें संशय करना सांशयिकमिथ्यात्व है । वस्तुस्वरूपसे विपरीत विश्वास करना विपरीत-

मिथ्यात्व है । देव कुदेव , शास्त्र कुशास्त्र , गुरु कुगुरु आदि सभी को समान समझकर विनय व अद्वान करना वैनियिक मिथ्यात्व है । हित अहितके विवेकका अभाव अ-ज्ञान मिथ्यात्व है ।

संस्कार से सभी मिथ्यादृष्टियों के पांचों मिथ्यात्व हैं परन्तु व्यावहारिक अभिव्यक्तिकी अपेक्षासे देखा जावे तो क्रमशः सांशयिक मिथ्यात्व , ऐकान्तिक मिथ्यात्व । वैनियिकमिथ्यात्व , विषरीतमिथ्यात्व व अज्ञान मिथ्यात्व वाले जीव अधिक अधिक हैं । एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय,असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंमें अज्ञानमिथ्यात्वकी विशेषता है । सेनी पञ्चेन्द्रिय जीवोंमें पांचों की विशेषता होसकती है । उपयोगमें एक समयमें एक मिथ्यात्व रहता है । मिथ्यात्वके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं ।

अपनेसे सर्वथा भिन्न धन मकान पुत्र मित्र स्त्री आदिको अपने समझना मिथ्यात्व है , क्योंकि पदार्थ का जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास न हुआ ।

शरीरका स्वरूप जीवोंसे बिलकुल जुदा है फिर भी शरीरको जीव समझना मिथ्यात्व है , क्योंकि पदार्थ का जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास नहीं हुआ ।

क्रोधादिकषाय जीवस्वरूप नहीं है किन्तु शाणिक

विकार है उसको अपना स्वरूप समझना मिथ्यात्व है क्योंकि पदार्थ का जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास नहीं हुआ विकार व अविकार सब अवस्थायें हैं उन्हें जीव व समझना मिथ्यात्व है, क्योंकि पदार्थका जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास नहीं हुआ ।

खोट देव, खोटे शास्त्र, खोटे गुरु की सेवा करना, देव दहाड़ी, होली आदि पूजना मिथ्यात्व है क्योंकि पदार्थ का जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास न हुआ । इस प्रकार अन्य प्रकारके सब भाव जो आत्मस्वभावसे भिन्न हैं उनमें रूचि प्रतीति हितबुद्धि करना सब मिथ्यात्व है ।

जिनमें मिथ्यात्व पाया जाता है उन्हें मिथ्यादृष्टि कहते हैं । मिथ्यादृष्टि जीवोंकी विशेष जानकारीके लिये विवरनसहित मिथ्यादृष्टियोंके कृच्छ प्रकार कहते हैं ।

अनंत मिथ्यादृष्टि-जिसको न तो अभी तक कभी सम्य गदर्शन हुआ और न कभी भविष्यमें होगा वह अनादि अनंत मिथ्यादृष्टि है । इसके अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ व मिथ्यात्व इन सम्यक्त्वविरोधक प्रकृतियों की सत्ता है शेष चारित्रमोहनीय की २१ की सत्ता है । इस प्रकार भोक्त्रकी २६ प्रकृतियोंकी सत्ता रहती है । इसके तीर्थकर व आहारक शरीर व आहारक अङ्गोपाङ्गकी भी सत्ता नहीं रहती । ये अभव्य या दूरातिदूर भव्य होते हैं,

अभव्य व दूरातिदूर भव्य अनादि अनंत मिथ्यादृष्टि ही होते हैं ।

अनादि सांत मिथ्यादृष्टि —जिनके अब तक कभी सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं हुआ किन्तु भविष्यमें सम्यक्त्व उत्पन्न होगा वे अनादि सांत मिथ्यादृष्टि हैं । इनके भी पूर्वत्  $५+२१=२६$  मोहनीय प्रकृतियोंकी सत्ता है । व तीर्थकर प्रकृति व आहारकद्विककी सत्ता नहीं है । ये निष्कटभव्य मिथ्यादृष्टि या दूरभव्य मिथ्यादृष्टि होते हैं ।

२८ मोह प्रकृतियोंकी प्रथम सत्तावाले मिथ्यादृष्टि—अनादि मिथ्यादृष्टि अधःकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण परिणाम द्वारा उक्त ५ प्रकृतियोंका उपशम करके जब प्रथमोपशम उत्पन्न करते ही सम्यग्दृष्टि बन जाता है तो प्रथमोपशम सम्यक्त्वके प्रथम समयमें ही मिथ्यात्वके ३ भाग होजाते हैं कुछ वर्गणायें मिथ्यात्व रूप ही रहती है, कुछ सम्यग्मिथ्यात्व रूप और कुछ सम्यक् प्रकृति रूप हो जाती हैं और ये सब प्रथमोपशम सम्यक्त्वके काल तक दबी हुई ( उपशांत ) ही रहती है । प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल अन्तमुहूर्त है सो अन्तमुहूर्त पश्चात् जब वह प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी विराधना कर मिथ्यात्व गुणस्थानमें पहुंचाता है तब वह उक्त ५ प्रकृतियाँ व सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति तथा चास्त्रिमोहनीयकी शेष २१

इस तरह २८ मोह प्रकृतियोंकी प्रथमसत्तावाला मिथ्या दृष्टि कहलाता है । अब यह सदि मिथ्यादृष्टि जीव हो गया ।

२७ की सत्तावाले मिथ्यादृष्टि—२८ की सत्तावाले मिथ्यादृष्टिको जब मिथ्यात्वमें कुछ अधिक काल व्यतीत होजाता है तब सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना (बदलना) हो कर वह सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिरूप होजाती है, पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होकर वह मिथ्यात्वरूप हो जाती है जब सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना होचुकती है और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना न हो पावे तब वहाँ वह २७ मोहमीयप्रकृतिकी सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि कहलाता है । यह भी सादि मिथ्यादृष्टि है ।

२६ मोहप्रकृतिकी सत्तावाला सादि मिथ्यादृष्टि— जब सम्यग्मिथ्यात्वकी भी उद्वेलना होकर वह मिथ्यात्व-प्रकृतिरूप हो जाती है तब अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ व मिथ्यात्वप्रकृति तथा चारित्र मोहनीयकी शेष २१ प्रकृतियाँ इस प्रकार २६ की सत्तावाला यह मिथ्यादृष्टि है । इसे उद्वेलित मिथ्यादृष्टि भी कहते हैं ।

२४ की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि—जिस मिथ्यादृष्टि ने अनन्तानुबन्धी कषायकी विसंयोजना (अप्रत्याख्यनाव्रण रूप हो ज्ञाना) करके उपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया

था, वह उपशमसम्यग्दृष्टे जीव जब सम्यक्त्वसे च्युत होता है और मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय होता है वहाँ यदि अनन्तानुबन्धीकी संयोजना न हो पावे तो अनन्तानुबन्धीको छोड़कर शेष सब मोहनीयकी २४ प्रकृति की सत्तावाला वह मिथ्यादृष्टि होता है । ऐसी स्थितिका समय बहुत अल्प है । यह भी सादि मिथ्यादृष्टि है । इस स्थितिमें जीवका मरण नहीं है ।

अनन्तानुबन्धी उदय रहित मिथ्यादृष्टि—यह २४ जी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जब उपशमसम्यक्त्वसे च्युत हुआ था अनन्तानुबन्धीकी सत्तासे रहित था सो अनन्तानुबन्धीका उदय अब कैसे हो । इसके अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं है अतः यह अनन्तानुबन्धी उदयरहित मिथ्यादृष्टि है । यह सादि मिथ्यादृष्टि है इसका काल अत्यन्त है । इसके अपर्याप्त अवस्था नहीं होती ।

मरण रहित मिथ्यादृष्टि—अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके जो उपशमसम्यग्दृष्टि हुआ था वह यदि मिथ्यात्व गुणस्थानमें आता है तो वह अनसंयोजित मिथ्यादृष्टि प्ररण रहित है । इसका अन्तर्मुहूर्त तक मरण नहीं होता ।

वेदकसम्यक्त्वसहित संयमासंयामभिमुख मिथ्यादृष्टि—जो वेदक सम्यक्त्व व संयमासंयम दोनोंको एक साथ उत्पन्न करनेके अभिमुख मिथ्यादृष्टि हैं वे वेदक

सम्यक्त्व सहित संयमासंयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि है । इसवे अथःकरण व अपूर्वकरण एकही बारमें होते हैं ।

वेदक सम्यक्त्वसहित संयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि—जो वेदक सम्यक्त्व व सकलसंयम एक साथ उत्पन्न करेंगे वे वेदकसम्यक्त्वसहित संयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि हैं । इन के भी २ ही कारण होते हैं ।

प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित संयमासंयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि—जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित संयमासंयमको एक साथ उत्पन्न करनेके अभिमुख हैं वे प्रथमोपशमसहित संयमासंयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं । इनके दोनों कार्यके लिये एक ही बार में तीन कारण होते हैं ।

प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित संयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि—जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित संयमासंयमको एक ही बार में उत्पन्न करनेके अभिमुख हैं वे प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित संयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि हैं । इनके भी दोनों कार्य केलिये एक बारमें तीनों करण होते हैं ।

वेदक योग्य मिथ्यादृष्टि—जिसने २८ मोह प्रकृति की सत्ता प्राप्त की है वह मिथ्यादृष्टि जब तक उद्देलना-संक्रमणकेद्वारा २७ की सत्ता नहीं कर पाता इस वीचके कालमें इस मिथ्यादृष्टि जीवके वेदक सम्यक्त्व उत्पन्न कर लेने की योग्यता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि को वेदक योग्य मि-

मिथ्यादृष्टि कहते हैं । यह सादि मिथ्यादृष्टि है ।

तीर्थकर प्रकृतिकी सत्तावाले गिथ्यादृष्टि-मिथ्यात्व गुणस्थानोंमें तीर्थकर प्रकृति व आहारक शरीर, आहार का ज्ञोपाङ्ग इन तीन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता । किन्तु जब कोई लेन्द्रादृष्टिदृष्टि अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि तीर्थकर प्रकृतिका बंध करले और पश्चात् भी वह वेदक सम्यग्दृष्टि रहे । यदि उसने तीर्थकर प्रकृतिबंधसे पहिले कभी मिथ्यात्व अवस्था में नरकायुक्त बंध कर लिया हो तो वह नरक में अवश्य उत्पन्न होगा सो मरणकालमें सम्यक्त्व छूट जावेगा और नारक अपर्याप्त होजावेगा । इस समय यह जीव तीर्थकर प्रकृतिकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि है । यह नारक अन्तमुहूर्त में पर्याप्त होतेही अन्तमुहूर्त बाद वेदकसम्यग्दृष्टिहो ही जावेगा । वह जब तक वेदकसम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह तीर्थकरकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि हैं । यह सादि मिथ्यादृष्टि है । यह जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि नहीं होता । किन्तु इस मिथ्यात्वसे पहिले वेदकसम्यग्दृष्टि था और उस मिथ्यात्वके बाद भी वेदकसम्यग्दृष्टि होता है ।

दर्शनमोहोपशामनाप्रतिष्ठापक मिथ्यादृष्टि जीव-अधः-करणपरिणामके प्रथम समयसे लेकर मिथ्यात्व व दर्शन मोहकी सर्व प्रकृतियोंके अन्तकरण कर चुकने तक दर्शन

मोपशामना प्रतिष्ठापक मिथ्यादृष्टि है । इसका न यह मरण होता और जब तक प्रथमोपशमसम्यक्त्व रहेगा तो तक मरण नहीं होगा ।

आहारकद्विक की सचावाले मिथ्यादृष्टि जीव-जिस सम्बन्धदृष्टि जीवने आहारक शरांर, आहारकाङ्गेपार का बंध कर लिया पश्चात् सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्या दृष्टि हो गया सो जब तक आहारद्विककी उद्धेलना नहीं होजाती तब तक आहारक द्विककी सचावाला मिथ्यादृष्टि है । यह सादिमिथ्यादृष्टि । इसके क्षायिक सम्पत्त्व नहीं था

ऐसा कोई मिथ्यादृष्टि जीव नहीं है जिसके तीर्थक प्रकृति और आहारकद्विक इन तीनों की सचा हो अर्थात् जिसके इन तीनों की सचा है वह मिथ्यात्व गुणस्थान नहीं आसकता ।

अग्रहीतमिथ्यादृष्टि जीव-जिनके देहादि आत्म माननेकी बुद्धि है अथवा आत्मस्वभावका अनुभव ना हुआ वे अग्रहीतमिथ्यादृष्टि हैं । क्योंकि इनको यह मिथ्यात्व किसी ने ग्रहणनहीं करा या है किन्तु विना उपदेश हुआ । सभी मिथ्यादृष्टि अग्रहीतमिथ्यादृष्टि होते हैं एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक तो अग्रही मिथ्यादृष्टि ही होते हैं । ये सादि मिथ्यादृष्टि व अनार्थी मिथ्यादृष्टि दोनों तरह के होते हैं ।

**ग्रहीतमिथ्यादृष्टि**—जो कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र को हितकारी समझते हैं व आदर पूजा करते हैं वे ग्रहीत-मिथ्यादृष्टि है, सैनी पञ्चेन्द्रियजी व ही ग्रहीत मिथ्यादृष्टि होते हैं । जो ग्रहीतमिथ्यादृष्टि हैं वे अग्रहीतमिथ्यादृष्टिं भी नियम से हैं । तथा सैनी पञ्चेन्द्रिय में ऐसे भी मिथ्यादृष्टि हैं जो ग्रहीतमिथ्यादृष्टि नहीं है, अग्रहीतमिथ्यादृष्टि ही है । ग्रहीतमिथ्यादृष्टि भी कोई सादिमिथ्यादृष्टि हैं और कोई अनादिमिथ्यादृष्टि भी है ।

**द्रव्यलिङ्गी मिथ्यादृष्टि**—जिन्होंने निर्गन्थ गुरु का लिङ्ग धारण किया है परन्तु भाव मिथ्यात्व गुणस्थानके हैं वे द्रव्यलिङ्गी मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं । ये सादिमिथ्यादृष्टि भी होते हैं और अनादि मिथ्यादृष्टि भी होते । ये अग्रहीत मिथ्यादृष्टि हैं ।

**सातिशय मिथ्यादृष्टि**—अवःकरण, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण करनेवाले मिथ्यादृष्टि सातिशय मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं, ये सम्यक्त्व के अतिनिकट अभिमुख होते हैं । ये भव्य मिथ्यादृष्टि ही हैं, अभव्यमिथ्यादृष्टि नहीं लब्धोन लब्धिक मिथ्यादृष्टि— मिथ्यात्वगुणस्थान में क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्य-लब्धि व करणलब्धि ये पांच लब्धियां होजाती हैं जिनमें करणलब्धिवाला तो सम्यक्त्व के अभिमुख है वह तो

सातिशय मिथ्यादृष्टि हैं किन्तु जिनके शेष १ या २ या ३ या चारों लब्धियां प्राप्त हुई वह आगे बढ़ भी सकता नहीं भी बढ़ सकता है तथा ये भव्यके भी होती है और अभव्य के भी हो सकती है। इन्हें लब्धोनलब्धिक मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशदात्त्वाद्वय, प्रायोग्यलब्धि, करणलब्धि, ये पांच लब्धियां मिथ्यात्व गुणस्थान में होती हैं। करण तो सम्यक्त्व होनेके पश्चात भी कई कार्योंकेलिये होते हैं परन्तु यहां करणलब्धिसे प्रयोजन सम्यक्त्व को उत्पन्न करने के लिये मिथ्यादृष्टि के अनन्त अपूर्व परिणामों से है।

क्षयोपशमलब्धि—जिस समय विशुद्धिकेद्वारा ऐसे शक्ति प्रकट हो जाती है कि पूर्व कर्मों के अनुभागस्पद्वय प्रति समय अनन्त गुणहीन होकर उदीरणा को ग्राह होते रहते हैं उस समयके क्षयोपशमकी प्राप्ति को क्षयोपशमलब्धि कहते हैं यह उत्थान के लिये प्रथम कदम है।

विशुद्धिलब्धि—क्षयोपशमलब्धि से अनन्त गुणहीन हो होकर अनुभागस्पद्वयकों की उदीरणा होनेसे जीवक विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है उसे विशुद्धिलब्धि कहते हैं। इस परिणामसे शुभ कर्मोंके बंधकी विशेषता होते हैं और अशुभ कर्मों के बंधकी हानि होती है।

देशनालब्धि—आचार्य आदिकेद्वारा तत्त्वोंके उपदेशों की प्राप्तिको और उपदेश किये गये अर्थके धारणा और विचारणकी शक्तिकी प्राप्तिको देशनालब्धि कहते हैं ।

प्रायोग्यलब्धि—सर्व कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका घात करके मात्र अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति कर देने और उत्कृष्ट अनुभागका घात करके द्विस्थानीय (मंद) अनुभाग कर देनेको प्रायोग्यलब्धि कहते हैं । इसमें ३४ वंधापसरण होते हैं, इनका वर्णन चौथे गुणस्थानोंके प्रकरण में करेंगे तथा करणलब्धि का भी वर्णन आगे गुणस्थानोंके प्रकरण में करेंगे ।

इसी प्रकार अन्य अन्य अनेक अपेक्षावों से अनेक प्रकारके मिथ्यादृष्टि होते हैं, विस्तारभयसे इस विषय को यहीं समाप्त करते हैं । और अन्य प्रकारकी कुछ विशेषतायें विवृत करते हैं ।

मिथ्यादृष्टि जीव तीसरे, चौथे, पांचवे व सातवें गुणस्थानोंमें जा सकता है पांचवे गुणस्थानमें जावेगा तो सम्यक्त्व व देशव्रत एक साथ होता है । सातवे गुणस्थान में जावेगा तो उपशम सम्यक्त्व या वेदक सम्यक्त्व व महाव्रत एक साथ हो जावेगा ।

छठवें, पांचवें, चौथे, तीसरे दूसरे गुणस्थान से मिथ्यात्व गुणस्थान में जीव आ सकता है । छठवें से

आने पर महाब्रत व सम्यक्त्वकी एक साथ विराधना होगी । पांचवेसे आनेपर देशब्रत व सम्यक्त्वकी एक साथ विराधना होगी ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें मरण करके चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं परन्तु देवोंमें वे ग्रैवेयकसे ऊपर उत्पन्न नहीं होंगे अर्थात् ६ अनुदिश, ५ अनुन्तरोंमें सम्यग्विष्ट जीव ही उत्पन्न होते । ग्रैवेयकमें निग्रन्थ लिङ्गमें साधना करने वाले ही उत्पन्न होते हैं ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें प्रथमोपशम सन्यक्त्व, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व या वेदक सम्यक्त्वसे च्युत होकर आसकते हैं किन्तु क्षायिकसम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वमें नहीं आसकते हैं, क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व कभी भी नष्ट नहीं होता ।

मिथ्यात्व गुणस्थान मोहके निमित्तसे होता है, अर्थात् मिथ्यात्वप्रकृतिनामक मोहनीय कर्मके उदयसे होता अत एव इस गुणस्थानमें भाव भी औदयिक भाव है ।

इस गुणस्थानमें सादिमिथ्यावस्थि जीवकी ऐसी भी स्थिति रहती है कि सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्प्रकृतिका उदयाभावी क्षय और इन्हींका सदवस्थारूप उपशम व मिथ्यावका उदय है । किन्तु इससे भी वह क्षायोपशमिकरूप नहीं कहला सकता क्योंकि प्रथम तो ये वार्ते अनादि-

मिथ्यादृष्टि व उद्देलित मिथ्यादृष्टि के न होने से सब-  
में व्याप्त नहीं है, दूसरी बात यह है कि मिथ्यात्व कार्य में  
निमित्त मिथ्यात्वका उदय है।

मिथ्यात्व गुणस्थान अनाहारक, लब्ध्यपर्याप्ति, निष्ट-  
त्यपर्याप्ति, व पर्याप्ति इन चारों प्रकार के जीवोंमें संभव है।  
अयोगकेवली गुणस्थानी जीव पर्याप्ति अनाहारक है और  
सिद्धजीव अतीतपर्याप्ति अनाहारक है, इनके अतिरिक्त शेष  
सब अनाहारक जीव अपर्याप्ति कहलाते हैं और लब्ध्य-  
पर्याप्ति व निष्टत्यपर्याप्ति भी अपर्याप्ति कहलाते हैं परन्तु जिन  
जीवोंको पर्याप्ति होना है उनके अनाहारक और निष्टत्यपर्याप्ति  
अवस्थामें भी पर्याप्तिनामकर्मका उदय है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें जीवसमाप्ति १४ होते हैं  
क्योंकि वादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्मएकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय,  
चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, संज्ञीपञ्चेन्द्रिय इनके  
पर्याप्ति और अपर्याप्ति दोनोंमें मिथ्यात्व गुणस्थान संभव  
है। परन्तु एक जीवके एक जन्ममें एक ही जातिके  
अपर्याप्ति और पर्याप्ति ये दो जीव समाप्ति होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें पर्याप्ति ६ होती है। एक  
जीवकी अपेक्षा ऐकेन्द्रिय में अपर्याप्ति व पर्याप्ति अवस्थामें  
४ अपर्याप्ति, ४ पर्याप्ति। द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुर्सिन्द्रिय  
असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय में पांच अपर्याप्ति, पांच पर्याप्ति होती हैं।

सैनी पञ्चेन्द्रिय में ६ अपर्याप्ति, व ६ पर्याप्ति होती हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें प्राण १० होते हैं। एक जीव की अपेक्षा एकेन्द्रियके अपर्याप्ति व पर्याप्ति अवस्थाओंमें ३ व ४ प्राण होते हैं। द्वीन्द्रियके ४ व ६ प्राण होते हैं। त्रीन्द्रिय के ५ व ७ प्राण होते हैं। चतुरिन्द्रिय के ६ व ८ प्राण होते हैं। असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय के ७ व ९ प्राण होते हैं। और सैनीपञ्चेन्द्रिय के ७ व १० प्राण होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें संज्ञा ४ होती है। यदि एकेन्द्रिय आदि भी है तो भी संज्ञाओं की निवृत्ति नहीं है, उनके भी संस्कार पड़ा हुआ है।

मिथ्यात्व गुणस्थान में गति ४ होती है—चारों गुरुदेवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं ये मिथ्यात्व गुणस्थान में मरकर भी चारों गतियों में जा सकते हैं। एक जन्म में एक ही गति होती है।

मिथ्यात्व गुणस्थान में पांचों प्रकार की जाति हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, 'चतुरिन्द्रिय' पञ्चेन्द्रिय। मरण के बाद विग्रहगति तक में भी ये जाति रहती हैं। एक जीवके एक जन्म में एक जाति रहती है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें छहों काय हैं—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, बनस्पतिकायिक, असकायिक। मिथ्यात्व में मरण करके भी छहों कायोंमें

से किसीमें भी जीव उत्पन्न हो सकते हैं। एक जन्म में एक जीवके एक काय होता है।

मिथ्यात्व गुणस्थान में १३ योग होते हैं—आहारक-योग व आहारकमिथ्रकाययोग नहीं होते ये छठे गुणस्थान में ही हो सकते हैं। एक जीवके योग्यतामें ११ होते हैं क्योंकि वैक्रियक काययोग व वैक्रियक मिथ्रकायोग हों तो औदारिकवाले २ योग नहीं होते और औदारिक २ हों तो वैक्रियक वाले २ नहीं होते हैं। अपर्याप्त अवस्था में ३ योग होते हैं किन्तु एक जीव के २ या १ होता है। पर्याप्त अवस्था में १० योग होते, परन्तु एक जीव के ६ की ही योग्यता है क्योंकि देव नारकी के वैक्रियक काययोग होता है और मनुष्य तिर्यक्के औदारिककाययोग होता है। योगवाले सभी जीवोंमें एक समयमें एक ही योग होता है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ३ वेद होते हैं—यह भाव-वेदकी अपेक्षा कथन है। एक जीवके एक जन्ममें एक ही वेद होता है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें कषायें २५ होती हैं। एक जीव के अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्ञलन संबंधी सदृश एक एक कषाय=४ वेदमें २ भय १ जुगुप्ता १ वेद १ इस तरह ६ हुई। किसी के ४+२

$+\text{१} \div \text{०} + \text{१} = \text{८}$  । किसी के  $\text{४} + \text{२} + \text{०} + \text{१} + \text{१} = \text{८}$  । किसी के  $\text{४} + \text{२} + \text{०} + \text{०} + \text{१} = \text{७}$  । किसी के  $\text{३} + \text{२} + \text{०} + \text{०} + \text{१} = \text{६}$  भी कषाय हो सकती है ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ज्ञान ३ होते हैं-कुमति कुश्रुत, कुअवधि । किसीके २ ही होते हैं कुमति, कुश्रुत । परन्तु एक जीवके एकदा एकही ज्ञानोपयोग होता है । अपर्याप्त अवस्थामें कुअवधि नहीं होता ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें असंयम ही होता ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें दर्शन चक्रुर्दर्शन व अचक्रु-  
क्रुर्दर्शन ये दो होते हैं । विभंगावधि कुमतिज्ञानपूर्वक होता व उसमें अवधिदर्शन नहीं होता । तथा एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय, श्रीन्द्रिय जीवके चक्रुर्दर्शन भी नहीं होता । एकदा एक जीवके एक ही दर्शनोपयोग होता है ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ६ लेश्यायें होजाती हैं । शु-  
क्ललेश्यात्कके परिणाम मिथ्यात्वमें भी व अनन्तानुदंधी  
कषायमें भी हो जाते हैं । एक जीवकेएक समय में एकही  
लेश्या होती है । एकेन्द्रिय से असैनीपञ्चेन्द्रिय तक तीन  
अशुभ लेश्यायें ही हो सकती हैं ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें भव्य भी होते हैं और अभ-  
व्य भी होते हैं । जो जीव भव्य है वह भव्य ही कहलाता  
जब तक सिद्ध न होजाय । सिद्ध होने पर न भव्य है न

अभव्य है। जो जीव अभव्य होता वह सदा अभव्य ही रहेगा।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें सम्यक्तथमार्गणमें मिथ्यादृष्टि ही होता है मिथ्यात्व गुणस्थानमें संज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी होते हैं, जो जीव संज्ञी है उस जन्ममें संज्ञी ही रहेगा व जो असंज्ञी है वह असंज्ञी ही रहेगा

मिथ्यात्व गुणस्थानमें आहारक भी होता है और अनाहारक जीव भी होता है। यह जीव विग्रह गतिमें ही अनाहारक रहता है शेष समय आहारक ही रहता है। मिथ्यात्व गुणस्थानमें उपयोग दोनों होते हैं किन्तु युग-पत् नहीं होते।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ध्यान ८ होते वे ये हैं आर्तध्यान ४ और रौद्रध्यान ४। एक समयमें एक ही ध्यान होता है। योग्यता सब इन आठोंकी रहती है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें आस्व ५५ हैं मिथ्यात्व ५' अविरति १२, कषाय २५, योग १३। एक जीव के आस्व कम से कम १० और अधिकसे अधिक १८ होते हैं, मध्यके ११-१२-१३-१४-१५-१६-१७ प्रकारके भी आस्व एक एक जीवके होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें भाव औदयिक, क्षायोप-शमिक व परिणामिक भावके प्रभेदोंकी अपेक्षासे ३२ होते

किन्तु एक जीवकी अपेक्षा पर्याप्तमें २१ से २७ तक व अपर्याप्तमें २० से २७ तक होते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीवोंका देह घनांगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर एक हजार योजन तककी अवगाहनाका होता है।

मिथ्यादृष्टि जीव अनंतानंत हैं अद्वयानंत है। मनुष्यगतिके मिथ्यादृष्टि संख्यात है उनसे असंख्याद्वयगुणे नारकी मिथ्यादृष्टि हैं उनसे असंख्यात्मगुणे देव मिथ्यादृष्टि हैं उनसे अनंत मुणे तिर्यक्ष मिथ्यादृष्टि हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव समस्त लोकमें रहते हैं क्योंकि लोक मिथ्या दृष्टि जीवोंसे भरा है। ऐसा कोई लोकका प्रदेश नहीं जहाँ अनंत मिथ्यादृष्टि न वसते हैं। किन्तु विहार करने वाले मिथ्यादृष्टि सर्वलोकमें नहीं हैं क्योंकि विहार केवल त्रस जीव ही करते हैं जो कि कुछ कम त्रसनाली (१४ राजू) में रहते हैं। त्रसोंमें भी पर्याप्त त्रस विहार करते हैं वे भी सब नहीं करते हैं फिर भी विहार कुछ समयको ही करते हैं अधिक समय आवास स्थान पर रहते हैं। मिथ्यादृष्टि देव विक्रियासे गमनागमन करें तो करीब इतने ही क्षेत्रमें विहार करते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव सदाकाल रहते हैं। किन्तु एक जीव की अपेक्षासे मिथ्यात्व जघन्यसे तो अन्तमृहृत्काल

तक रहता है और उत्कृष्टसे(१४अन्तमुर्हृतकम) अद्विद्युद्गल परिवर्तनकाल होता है। ये १४ अन्तमुहूर्त भी एक अन्त-मुहूर्तमें गमित हैं। कोई जीव तीसरे याचौथे या पांचवें या छठे से जीव मिथ्यात्वमें आवे वहां जघन्य अन्तमुहूर्त रहकर फिर तीसरे या चौथे या पांचवे या सातवेंमें चला जावे तो वीवमें जो मिथ्यात्व आया था वह सर्व जघन्य अन्तमुर्हूर्त रहा। दूसरे गुणस्थानसे गिरकर मिथ्यात्वमें आवे और फिर तीसरे या चौथे आदि में पहुंचे ऐसे जीवको मिथ्यात्वमें सर्वजघन्य अन्तमुर्हूर्तमें अधिक समय लगता क्योंकि अधिक संक्लेश परिणामसे मिथ्यात्वमें आया था। उत्कृष्टकाल इस प्रकार लभता है कि अनादि मिथ्यादृष्टि कोई जीव अद्विद्युद्गल परिवर्तनकाल के शेष रहने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और अन्त-मुर्हूर्त रहकर सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वमें आगया मिथ्यात्वमें ही भ्रमता रहा अन्त में जब अन्तमुहूर्त शेष रहा जिसमें १३ अन्तमुहूर्त हैं उसमें सम्यक्त्व चारित्र की साधना करके सिद्ध होगया सो १ अन्तमुर्हूर्त तो सबसे पहिले के सम्यक्त्वमें लगा था जिसके बाद मिथ्यात्व हुआ और १३ ये। १४ अन्तमुहूर्तकाल अद्विद्युद्गल परिवर्तनकाल मिथ्यात्व का उत्कृष्ट काल है।

अपूर्व पुरुषार्थ के वे १२ अन्तमुहूर्त इस प्रकार हैं-

१ प्रथमोपशमसम्बन्धत्व में , (२) वेदक सम्यक्तत्वमें (३) अनुबंधीके विसंयोजनमें, (४) दर्शनमोहके क्षय में, (५) अप्रमत्तसंयतमें, (६) प्रमत्त अप्रमत्तमें सहस्रों बार परिवर्तनमें (७) सातिशय अप्रमत्तमें, (८) अपूर्वकरण क्षपकमें, (९) अनिवृत्तिकरण क्षपकमें, (१०) सूच्चमसाम्पराय क्षपकमें (११) क्षीणकषायमें, (१२) सयोगकेवलीमें (१३) अयोग केवलीमें । इसके पश्चात् मिद्र होगया ।

मिथ्यादृष्टि जीव यदि मिथ्यात्व गुणस्थान को छोड़ कर फिर जल्दी मिथ्यात्वमें आवे तो वह बीच का अन्तर अल्प अन्तमुर्हूर्त हैं । एक ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव जो पहिले तीसरे चौथे पांचवे सातवें छठवें में बहुत बार परिवर्तन कर करके मिथ्यादृष्टि हुआ वह सम्यक्तत्व को प्राप्त करके अल्प अन्तमुर्हूर्त सम्यक्तत्व में रहकर मिथ्यात्व में आजाता है मोयही जघन्य अन्तर है । जो संयम व सम्यक्तत्व में बहुत रहकर मिथ्यादृष्टि नहीं हुआ और बहुत पहिले से ही मिथ्यात्व में है । वह यदि सम्यक्तत्व पावेगा तो इस मिथ्यादृष्टि से अधिक जघन्यकाल में वह रहेगा ।

मिथ्यात्वदृष्टि जीव यदि मिथ्यात्व गुणस्थान के छोड़दे और अधिक काल अंय गुणरथानों में रहकर फिर मिथ्यात्व में आवे तो यह उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुर्हूर्त का १३२ सागरका होता है । कोई मिथ्यादृष्टि जीव वेद-

( सम्यक्त्वको प्राप्त करे वहां अन्तमुहूर्तकम् ६६ सागर तक रहे फिर अन्तमुहूर्त तीसरे गुणस्थानमें रहे फिर वेदक सम्बत्त्व प्राप्त करे यहां अन्तमुहूर्तकम् ६६ सागर तक रहे पश्चात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें आजाषेतो यह अन्तर अन्तमुहूर्तकम् १३२ सागर का होता है । यहां विशेषध्यान देने की बात यह है कि यदि कोई जीव पूरा ६६ सागर वेदक सम्यक्त्वमें रहले तो फिर क्षायिक सम्यक्त्व ही हो होगा । इस कारण इस अन्तर में अन्तमुहूर्त कम वेदक सम्यक्त्व में बताया गया है ।

मिथ्यादृष्टि जीवों में एक जीव की अपेक्षा गति इन्द्रिय आदि की अपेक्षासे कितने ही प्रकार से बंध प्रकृतियां होती हैं इसी प्रकार उदय और सन्त्वंकी प्रकृतियां होती हैं तथापि सामान्यालापसे मिथ्यादृष्टि के ११७ प्रकृतिं का बंध होता है । तीर्थकर प्रकृतिनामकर्म, आहारकनामकर्म, आहारकाङ्गोपाङ्ग नामकर्म नहीं बंधता है । सब बंधयोग्य प्रकृति ११७ मानी है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्-प्रज्ञात्वात् तो बंध नहीं होता और शरीर, बन्धन, संधात की १५ प्रकृतियों को ५ में गमितकर लिया और त्पर्श द, रस ५, गंध २, वर्ण ५ इन २० प्रकृतियोंको ४ मूल पिन्डमें ले किया । इस तरह सब १४२ प्रकृतियोंमें से २+१०+१६=२८प्रकृति कम करनेसे १२० होते हैं )

मिथ्यादृष्टि जीवमें सौक्षम्यालाप से १७ प्रकृतिव  
उदय है, तीर्थकर नामकर्म, आहारक शरीरनामकर्म, आ  
हारकाङ्गोपाङ्ग नामकर्म, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति व सम्यव  
प्रकृति इन पांच का उदय नहीं है। उदय योग्य सब प्रकृति  
१२२ है। बंधयोग्य प्रकृतियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व सम्यव  
प्रकृति और मिलानेसे उदययोग्य १२२ प्रकृतियाँ होजाते  
हैं।

मिथ्यादृष्टि जीवमें सत्त्व १४८ प्रकृतिका हो सकत

मिथ्यादृष्टि, अमददृष्टि, व्यवहारदृष्टि, अभूतार्थदृष्टि  
अथथार्थदृष्टि, अमत्यर्थदृष्टि, पर्यायदृष्टि, परसमय, पर्याय  
मृढ़, पर्यायबुद्धि, वित्तदृष्टि, व्यलीकदृष्टि, मिथ्यादृष्टि  
मोही, मुग्ध मृढ़ आदि सब एकार्थक हैं।

जीवोंको संसारक्लेशका मूलकारण मिथ्यात्व है  
इसका विनाश अनंतानुबंधी क्षय व दर्शनमोहकाउ पशम :  
क्षयोपशम को निमित्त पाकरके होता है। क्षय तो उसीके  
होता है जिसके मिथ्यात्वका अभाव है अर्थात् वेदकसम्य-  
त्तव है। उपशम क्षयोपशम का निमित्त आत्मभावना है,  
आत्मभावना का कारण भेदविज्ञान है, मेदविज्ञानका कारण  
तत्त्वाभ्यास है, तत्त्वाभ्यासका निमित्त ज्ञानावरणका विशिष्ट  
क्षयोपशम है। सो विशिष्ट क्षयोपशम तो प्राप्त होगया अब

तत्त्वाभ्यास करके और उसको अभेद स्वभावमें ले जाकर अपने आपको निस्तरंग बनाकर मिथ्यात्वसे रहित होओ । इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानका वर्णन करके अब सासादन सम्यक्त्व गुणस्थानके विषयमें कहते हैं—

### सासादन सम्यक्त्व

जिस उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक्त्वकी विराधना (विनाश) हो गई और मिथ्यात्वकर्मके उदयसे होने वाला मिथ्यात्व आ नहीं पाया इस वीचके परिणामोंको सासादनसम्यक्त्व कहते हैं ।

आसादन नाम सम्यक्त्वकी विराधनाका है, जो आसादनसे अर्थात् सम्यक्त्वकी विराधनासे सहित है उसे सासादनसम्यग्दृष्टि कहते हैं इसके परिणामको सासादन सम्यक्त्व कहते हैं ।

आयं असादयति इति असादनम् यहां वृषोदरादित्वात् य शब्दका लोप हो गया और कृद्वलम् इस नीति से अनट् प्रत्यय हुआ तब आसादनम् बना । आसादनका अर्थ है जो औपशमिक सम्यक्त्वकी आय (लाभ) को नष्ट कर दे । इस आसादनके साथ जो रहें उन्हें सासादन

।

इसका दूसरा नाम सासन भी है । असन अर्थात्

सम्यक्तवकी विराधना उसके साथ जो रहे उसे सासन कहते हैं।

इसका दूसरा नाम सास्वादन भी हो सकता है। सर्वयक्तव्यपरस के आस्वादनसे जो रहे सो स+आस्वादन भा दादन है परन्तु आस्वादनके करनेवाले पुरुषके वमन के रवादके समान आखिरी विगड़ा स्वाद है। इसके पश्चात् नियमसे मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। यह सम्यक्तवका वमन करनेवाला जीव है।

इस गुणस्थानवाला जीव असद्दृष्टि है क्योंकि इसके अनन्तानुबन्धीजनित विपरीत अभिप्राय है।

जैसे कोई पर्वतके शिखरपर से गिर पड़े और उबतक भूमिमें न पड़े ऐसी वीचकी स्थिति होती है इसी तरह सम्यक्तवसे गिर जाय और मिथ्यात्वमें न आपाये ऐसे वीचका परिणाम इस गुणस्थानमें है।

इस गुणस्थानमें चारों गतिके जीव होते हैं परन्तु सासादनमें मरण करके नरकगतिमें उत्पन्न नहीं होता। नर्छणादेमें जीव सासादन गुणस्थानको उत्पन्न कर लेते हैं अर्थात् सम्यक्तवसे च्युत होकर नारकी भी सासादन को प्राप्त होते हैं।

सासन गुणस्थानवर्ती जीवके तीर्थकरण कृति व आहा रक्षिक इनमेंसे किसीकी सत्ता नहीं होती अर्थात्

इनमें किसी की भी सत्ता हो तो वह जीव सासादन गुणस्थानमें नहीं जाता । सारांशदात्यगृष्टि जीवोंकी विशेषजानकारीके लिये विवरण सहित कुछ रासांशदात्यगृष्टियोंके प्रकार कहते हैं ।

**प्रथमोपशमच्युत सासादन-**जो जीव प्रथमोपशमसे च्युत होकर इस गुणस्थानमें आये हैं ।

द्वितीयोपशमच्युतसासादनमृत सासादन-जो जीव द्वितीयोपशमसे च्युत होकर सासादन गुणस्थानमें आगया वह मरण करे तो द्वितीयोपशमच्युतसासादनमृतसासादन है । यह जीव देवगतिमें उत्पन्न होता । सामन जीव पर्याप्त हो जाता व अपर्याप्त में ही मिथ्यादृष्टि हो जाता है ।

**प्रथमोपशमच्युत सासादनमृत सासादन-**जो जीव प्रथमोपशमसे च्युत होकर सासादन गुणस्थानमें आगया वहां मरण करे तो वह प्रथमोपशमच्युत सासादनमृतसासादन है । यह जीव मरणकरके तिर्यक्ष, मनुष्य या देव इन गतियोंमें से किसी भी गतिमें जा सकता है ।

**विग्रहगतिसमाप्तसासादन-** जीव सामन गुणस्थानके २-१ समय शेष रहने पर मरा तो उसका वह गुणस्थान जन्मस्थान पर पहुँचने तक ही पूर्ण हो सकता है । ऐसा जीव विग्रहगतिसमाप्त सासादन है ।

**निष्ठृत्यपर्याप्तिसमाप्तसासादन-**जो जीव जन्म-

स्थान पर पहुंचकर भी सासादन रहते हैं वे शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिले ही अपना सासादन गुणस्थान पूर्ण कर देते हैं अर्थात् भिथ्यात्म गुणस्थानवर्ती हो जाते हैं ।

**क्रोधप्रेरित सासादन** —उपशमसम्यक्त्वका काल कमसे कम एक समय व अधिकसे अधिक द्वावली शेष रहनेपर सासादन गुणस्थान हुआ करता है । सो अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया व लोभ इनमें से किसीका उदय होतेही सासादन होता है उस जीवके यदि अनंतानुबंधी क्रोध के उदयके निमित्तसे सासादनसम्यक्त्व हुआ है तो वह क्रोध प्रेरित सासादन सम्यग्दृष्टि है ।

**मानप्रेरित सासादन**—जो जीव अनन्तानुबंधी मान कषायके उदयसे सासादन गुणस्थानमें आये हैं वे मानप्रेरित सासादन हैं ।

**मायाप्रेरित सासादन**—जो जीव अनंतानुबंधी माया कषायके उदयसे सासादनगुणस्थानमें आये हैं वे मायाप्रेरित सासादनसम्यग्दृष्टि हैं ।

**लोभप्रेरित सासादन**—जो जीव अनंतानुबंधी लोभ-कषायके उदयसे सासादनगुणस्थानमें आये हैं वे लोभप्रेरित सासादन सम्यग्दृष्टि हैं ।

इसीप्रकार अन्यअपेक्षाओंसे भी इसके प्रकार जानना चाहिये।  
सासादन गुणस्थानमें मरण करके जीव बादर एके-

न्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असैनीपञ्चेन्द्रिय व सैनी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो सकते हैं ।

सासादन गुणस्थानमें बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्ति, द्वीन्द्रिय अपर्याप्ति, त्रीन्द्रिय अपर्याप्ति, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्ति, अपैनीपञ्चेन्द्रिय अपर्याप्ति, सैनी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्ति, सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्ति ये ७ जीव समान होते हैं । जिस मनसे मायाद्वय भरका सैनीपञ्चेन्द्रियमें ही उत्पन्न होता है उस अपेक्षासे २ ही जीव समाम होते हैं ? १ सैनी पञ्चेन्द्रिय-अपर्याप्ति, २ सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्ति ।

सासादनमें ४ अपर्याप्तियाँ, ५ अपर्याप्तियाँ, ६ अपर्याप्तियाँ व ६ पर्याप्तियाँ होती हैं, अथवा ६ अपर्याप्तियाँ व ६ पर्याप्तियाँ होती हैं ।

सासादनमें प्राण३, ४, ५, ६, ७, ७ व १० प्राण होते हैं अथवा ७ या १० प्राण होते हैं ।

सासादनमें संज्ञा चार, गति चार, द्विन्द्रियजाति ५ अथवा एक सैनी पञ्चेन्द्रिय, काय६ या १ त्रसकाय होते हैं ।

सासादनमें योग १३ होते हैं आहारककाययोगद्विक नहीं होते । परन्तु एक जीवके पर्याप्तमें ही और अपर्याप्तमें २ या १ योग्यतासे होते हैं । एकदा एक ही योग होता है

मासनमें वेद तीनों होते हैं किन्तु एक जन्ममें एक ही वेद होता है ।

सासनमें कषाय २५ होती हैं। एक जीव की अपेक्षा ७ या ८ होते हैं। सासनमें ३ कुञ्जान , एक असंयम २ दर्शन , ६ लेश्या भव्यत्व , मासनसम्यक्त्व , संज्ञी असंज्ञी २ अथवा संज्ञी एकही , आहारक व अनाहारक हों हैं। उपयोग दोनों क्रमशः होते ।

सासनमें ध्यान आर्तध्यान ४ व रौद्रध्यान ४ ये ८ होते हैं। एक समय एक जीवके एक ही ध्यान होता है

सासादनमें आस्त्र ५० होते हैं, यहाँ मिथ्यात्व ५ और आहारकाययोग व आहारकमिश्रकाययोग नहीं होता। पर्याप्तमें ४७ आस्त्र हैं और अपर्याप्तमें ४० आस्त्र हैं परन्तु एक जीवकी अपेक्षासे पर्याप्तमें १० से १७ तक और अपर्याप्तमें भी १० से १७ तक होते हैं।

सासादन गुणस्थानमें भाव ३२ होते हैं और पर्याप्त मासादनमें भी ३२ हैं व अपर्याप्त में ३४ हैं, किन्तु एक जीवकी अपेक्षासे सासादन पर्याप्तमें २१ से २७ तक हो सकते हैं और अपर्याप्तमें २० से २७ तक हो सकते हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके देहकी अवगाहना वनांगुलके असंख्यातर्वें भागसे लेकर १००० योजन तक की हो सकती है। बड़ी अवगाहना का जीव महामत्स्य है।

सासनसम्यग्दृष्टियों की संख्या अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातर्वें भाग प्रमाण है और कमसे कम

कभी एक भी रहती है और कभी ऐसा भी होता है कि एक भी नहीं होता ।

सासादन जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ।

सासादन सम्यक्त्व का काल एक जीवकी अपेक्षा कमसे कम एक समय व अधिकसे अधिक ६ आवली हैं । नाना जीवकी अपेक्षा एक समयसे लेकर पल्यके असंख्यातवें भाग तक सामन रहते हैं इसके पश्चात् नियमसे विरह होता है । बीचमें भी कभी एक समय या अधिक समय का विरह हो सकता है ।

सासादनसे पहिले गुणस्थानमें ही पहुँचना होता, परन्तु दूसरेमें चौथे, पांचवें या छठवेंसे पहुँच सकता है । उपशमसम्यक्त्वकी विराधनासे चौथे से पहुँच सकता है, उपशमसम्यक्त्व व संयमासंयमकी एक साथ विराधना से पांचवेंसे दूसरेमें जाता है और उपशमसम्यक्त्व व महाव्रतकी एक साथ विराधना होनेपर छठवेंसे दूसरे में पहुँचता ।

सासन गुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा बंधप्रकृतियोंकी संख्या नाना प्रकारसे हैं क्योंकि गति आदिके भेदसे ये नाना प्रकारके होजाते हैं । नाना जीवकी अपेक्षा बंधप्रकृति इसमें १०१ है क्योंकि इस गुणस्थानमें

मिश्यात्व, हुंडक, नपुसंक, असंप्राससृपाटिका, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूच्चम, अपर्याप्ति, साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु ये १६ तो मिश्यात्वमें बंधव्युच्छित्तिवाली और तीर्थकर व आहारकद्विक इस तरह १६ प्रकृतियोंका बंध नहीं होता है ।

सासान गुणस्थानमें उदय एक जीवकी अपेक्षा गति आदिके भेदसे भिन्न भिन्न प्रकारसे है । नाना जीवकी अपेक्षा उदय ११ प्रकृतियोंका है । इसमें मिश्यात्व, आताप, सूच्चम, अपर्याप्ति, साधारण इन ५ मिश्यात्वमें उदय व्युच्छित्तिवाली तथा तीर्थकरप्रकृति, आहारद्विक, सम्यग्मिध्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति नरकगत्यानुपूर्वी ये ६ इस प्रकार ११ प्रकृतिका उदय नहीं है ।

सासादनमें सच्च नाना जीवकी अपेक्षा १४५ प्रकृतियोंका है क्योंकि जिसके तीर्थकरप्रकृति व आहारकद्विक की सत्ता होती है वह दूसरे गुणस्थानमें नहीं पहुँचता । इस गुणस्थानमें तीर्थकरप्रकृति व आहारकद्विक इन तीनकी सत्ता नहीं होती ।

इस गुणस्थानमें मोहकी ओरसे पारेणामिक्ता होनेसे पारिणामिकभाव है, अर्थात् सासादन गुणस्थान दर्शनमोहके न उदयसे होता है, न क्षयसे, न उपशम

से, न क्योपशमसे । अतः परिणामिक भावहै । यह पारिणामिकपना केवल दर्शनमोहकी अपेक्षासे है । इसे जीवत्वभव्यत्व अभव्यत्वकी तरह पारिणामिकता नहीं समझना । क्योंकि जीवत्व आदि तो आठों कर्मों की ओर से पारिणामिक है परन्तु सासादन गुणस्थान केवल दर्शनमोहकी ओर से पारिणामिक है ।

यह गुणस्थान अनंतानुबन्धी कषायके उदयसे होता है । इसलिये औदिक भी कह सकते हैं किंतु इस क्यन की प्रधानता नहीं हैं । क्योंकि आदिके ४गुणस्थान दर्शनमोहकी अपेक्षासे कहे गये हैं ।

इस गुणस्थानमें निमित्त मोह है क्योंकि मोहकी अपेक्षा पारिणामिकता होनेसे वह गुणस्थान हुआ है ।

इस गुणस्थान व इस गुणस्थानवर्ती जीवका नाम सान भी सांकेतिक संक्षिप्त नाम हैं स याने सहित, अनयाने अनंतानुबन्धी अर्थात् जो अनंतानुबन्धी कषायके उदयसे सहित है उसे सान कहते हैं । यद्यपि अनंतानुबन्धी कषाय का उदय पहिले गुणस्थानमें भी है तथापि वह मिथ्यात्व करिके भी सहित है अतः इस शब्दसे मिथ्यात्वके उदयरहित अनंतानुबन्धीके उदयकी विशेषता प्रकट की गई है । सासादन गुणस्थानमें मिथ्यात्वका उदय नहीं है और अनंतानुबन्धी कषायका उदय है अतः सानशब्दसे द्वितीय

गुणस्थान व द्विर्तीय गुणस्थानवर्ती जीवका ग्रहण हुआ ।

सासादन सम्यग्दृष्टि , सासादनसम्यक्त्व , सासादन , सासन , सास्वादन , मान ये सब एकार्थवाचक हैं ।

इस प्रकार सासादन सम्यक्त्वका वर्णन करके अब सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका वर्णन करते हैं -

### सम्यग्मिथ्यात्व

सम्यक् याने समीचीन (सच्ची), मिथ्या(भूंटी), दृष्टि कहिये श्रद्धा या रुचि जिमके होती है वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि है उसके परिणामको सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं । गुण गुणी मेंअथवा रुचि सभी गुणस्थान गुणस्थानवर्तीयोंके नाम हैं और गुणस्थानवर्ती जीव ही गुणस्थान है ।

एकसाथ समीचीन असमीचीन श्रद्धावाला जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि है । जैसे पहिले माने हुए अन्य देवता का परित्याग किये बिना अरहंतमें भी देव हैं ऐसी श्रद्धा होनाँ इसी तरह तत्त्व आदिके सम्बन्धमें लगा लेना ।

जैसे किसी पुरुषकी किमीमें मित्रता है और किसी में शत्रुता है तो मित्रता व शत्रुता दोनों प्रकारके भाव एक पुरुषमें संभव है इसी प्रकार तत्त्वश्रद्धान और अतत्त्वश्रद्धान एक साथ जीवमें कदाचित् संभव है ।

यह गुणरथोन न तो सम्यक्त्वरूप ही है और न मिथ्यात्वरूप ही है किन्तु दोनोंसे विलक्षण मिश्ररूप है । जैसे

दहो व गुड़के मिक्चर में न गुड़का स्वाद रहता है, दोनोंसे विलक्षण मिश्र स्वाद है ।

सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थान सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिके उदयसे होता है परन्तु यह उदय शिथिलरूप है, क्योपशमवत् है अथवा मिश्ररूप है अतः क्षायोपशमिक भाव है । सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिका भी दूसरा नाम मिश्र सम्यक्त्व है वह प्रकृति मिध्यात्वके स्पर्द्धकोंकी शिथिलतासे टूट फूट से बनी है अतः उसका उदय क्षायोपशमिकतावत् है ।

इस गुणस्थानमें यद्यपि यह भी स्थिति रहती है कि मिध्यात्व प्रकृतिके सर्वधारी स्पर्द्धकोंका उदयाभावी क्षय व आगामी उदययोग्य इन्हीं स्पर्द्धकोंका उदयाभावरूप उपशम

सम्यग्मिध्यात्वका उदय है किन्तु इस कारण से क्षायोपशमिक भाव नहीं है । क्योंकि उपशमसम्यक्त्वसे तीसरे गुणस्थानमें आये हुए सम्यग्मिध्यादृष्टिके मिध्यात्वका उदयाभावी क्षय नहीं पाया जाता किन्तु उदयाभाव पाया जाता तथा इस तरह क्षायोपशमिक माननेपर सादि मिध्यादृष्टि जांचके भी मिश्रसम्यक्त्व व मम्यक्प्रकृतिका उदयाभावी क्षय व उदयाभावरूप उपशम, मिध्यात्वकाउदय होनेसे मिध्यात्व गुणस्थानको भी क्षायोपशमिक मानना पड़ेगा ।

इस गुणस्थानमें यद्यपि अनंतानुबंधीके क्षयोपशमकी भी स्थिति रहती है किन्तु इस कारण से भी क्षायोपशमिकता

नहीं, क्योंकि आदिके चार गुणस्थान दर्शनमोहके निमित्त माने गये, तभी तो दूसरे गुणस्थानको भी औदियिक नहीं कहा। दूसरी बात यह है कि उपशमसम्यक्त्वसे मिश्र आये हुए जीवके अनंतानुबंधीका उदयभावी क्षय नहीं पाजाता, मात्र उदयाभाव पाया जाता है।

इस गुणस्थानमें सम्यक्प्रकृतिका उदयक्षय व सीक उदयाभाव उपशम और सम्यग्मिध्यात्वके उदयसे भी क्षायो पशमिकता नहीं मानना, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वसे मिश्र आये हुए जीवके सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयभावी क्षर नहीं पाया जाता, मात्र उदयाभावरूप उपशम रहता है।

उक्त तीनों प्रकारकी क्षायोपशमिकताओंका ज्ञान तं अवग्य करलेना चाहिये किन्तु इस गुणस्थानमें इस हेतुसे क्षायोपशमिकता नहीं मानना चाहिये क्योंकि उन लक्षणोंम अव्याप्ति दोष है।

अब सम्यग्मिध्यादृष्टियोंकीकुछ विशेषताओंके लिए उनके प्रकारोंका कुछ वर्णन करते हैं—

वेदक्योग्यमिध्यात्वागत सम्यग्मिध्यादृष्टि—जो जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करके उसके पश्चात् अथवा यथासमय तक यथायोग्य अवस्थाके पश्चात् मिध्यादृष्टि हुआ है उसमें सम्यक्त्वविरोधिनी सातों प्रकृतियोंका सच्च है उसके वेदक्योग्यकाल के भीतर यदि सम्यग्मिध्यात्वका उदय आ-

जावे तो वह वेदकयोग्यामिध्यात्मायतसम्यग्मिध्याद्विष्टि है । इसके मिध्यात्म, सम्यकप्रकृति व अनंतानुबंधीका उदयाभावीक्षय और उदयाभाव उपशम तथा सम्यग्मिध्यात्म व अन्यकषायोंका उदय हैं ।

द्वितीयोपशमागत सम्यग्मिध्याद्विष्ट-द्वितीयोपशम के सम्यक्त्वका काल समाप्त होनेपर यदि सम्यग्मिध्यात्म का उदय आजाय तो वह द्वितीयोपशमागत सम्यग्मिध्यत्वाद्विष्ट हैं । इसके मिध्यात्म व सम्यक्त्व प्रकृतिका उदयाभावरूप उपशम रहता है । द्वितीयोपशमसम्यग्द्विष्ट श्रेणीमें तो क्रमशः उत्तरकर छठे तक आता है इसके पश्चात् क्रमशः या एक दूम सम्यग्मिध्याद्विष्ट हो सकता है ।

प्रथमोपशमागत सम्यग्मिध्याद्विष्ट-जो प्रथमोपशम-सम्यक्त्वसे च्युत होकर तीसरंगुणस्थानमें आये हैं वे प्रथमोपशमागतसम्यग्मिध्याद्विष्ट हैं । इम प्रथमोपशमसम्यग्द्विष्ट ने यदि अनंतानुबंधीका प्रशर्णोपशम किया था तो वहां मिध्यात्म सम्यकप्रकृतिका उदयाभाव व अनंतानुबंधीके अतिरिक्त अन्यकषाय व सम्यग्मिध्यात्म का उदय रहता

वेदकसम्यक्त्वागत सम्यग्मिध्याद्विष्ट जो वेदकसम्यक्त्व से च्युत होकर सम्यग्मिध्यात्ममें आया वह वेदकसम्यवागत सम्यग्मिध्याद्विष्ट है इस जीव के मिध्यात्म सम्बन्ध

प्रकृति अनंतानुबंधीका उदयाभावी क्षय व उदयाभावरूप उपशम व सम्यग्मिध्यात्व व अन्य क्षायका उदय रहता है ।

२८ की सत्तावाला सम्यग्मिध्याद्विषि—२८ प्रकृति की सत्तावाले मिध्यात्वसे तीमरे गुणस्थानमें आये हुये अथवा वेदकसम्यक्त्वसे च्युत होकर मिश्र गुणस्थानमें आये हुए जीव २८ की सत्तावाले सम्यग्मिध्याद्विषि हैं ।

२४ की सत्तावाला सम्यग्मिध्याद्विषि— अनन्तानुबंधीकी विसंयोजना करनेवाले द्वितीयोपशम सम्यक्त्वस्थानसे च्युत होकर जो सम्यग्मिध्याद्विषि हुये हैं वे २४ की सत्तावाले सम्यग्मिध्याद्विषि है

उपर्यागतिगतिक सम्यग्मिध्याद्विषि जो ऊपरके गुणस्थानसे च्युत होकर सम्यग्मिध्याद्विषि हुआ और पश्चात् अविरत सम्यक्त्वमें पहुंचे तो वह सम्यग्मिध्याद्विषि उपर्यागतिगतिक सम्यग्मिध्याद्विषि है । इसका इस गुणस्थानमें सर्वजघन्यकाल नहीं होता क्योंकि सम्यग्द्विषि संकलेशपरिणामसंसम्यग्मिध्यात्वमें आया उसे फिर ऊपर ही जानेको विशुद्धपरिणाम चाहिये सो इसमें विलम्ब होजाता है ।

उपर्यागत्यधोगतिक सम्यग्मिध्याद्विषि-जो चौथे अम्बि ऊपरके गुणस्थानसे च्युत होकर सम्यग्मिध्यात्वमें आया व पश्चात् मिध्यात्व गुणस्थानमें जावे तो वह उपर्या-

गत्यधोगतिक सम्यग्मिध्यादृष्टि है । इसका काल सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त हो सकता है क्योंकि संक्लेश परिणाम से गिर कर तीसरे में आए हुये व संक्लेश से ही मिथ्यात्व में पहुँचे हुए जीव का इस गुणस्थान से निकलने में विलम्ब नहीं लगता ।

**अधःसमायातोपरिगतिक सम्यग्मिध्यादृष्टि—मिथ्यात्व** गुणस्थान से विशुद्ध परिणाम द्वारा तीसरे गुणस्थान में पहुँचे हुये और पश्चात् शीघ्र विशुद्ध परिणाम से अविरत सम्यक्त्व में पहुँचने वाले जीव को तीसरे गुणस्थान में अधःसमायातोपरिगतिक सम्यग्मिध्यादृष्टि कहते हैं । इसका भी काल पूर्ववत् जघन्य है ।

**अधःसमायाताधोगतिक सम्यग्मिध्यादृष्टि—मिथ्यात्व** गुणस्थान से तीसरे गुणस्थान में पहुँचने वाले व पश्चात् मिथ्यात्व में ही पहुँचने वाले जीव को तीसरे गुणस्थान में अधःसमायाताधोगतिक सम्यग्मिध्यादृष्टि कहते हैं । इस का भी जघन्यकाल पूर्ववत् अल्प नहीं है क्योंकि इसे विशुद्ध संक्लिष्ट परिणाम करना होता है ।

सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थान में मरण नहीं होता और न इस गुणस्थान में आयुका बंध ही होता । सम्यग्मिध्यादृष्टि जीव के यदि शीघ्र मरण काल आजावे तो वह यदि मिथ्यात्व अवस्था में आयु बांध चुका था तो मिथ्यात्व में जावेगा और यदि सम्यक्त्व में आयु बांध चुका था तो अवि-

रत सम्यक्त्वमें जावेगा और वहीं मरण करेगा अर्थात् नवी आयुका उदय पावेगा ।

इस गुणस्थानमें तीर्थकर प्रकृतिकी सत्तावाला जी नहीं होता है अर्थात् तीर्थकर प्रकृतिकी सत्तावाला जी तीसरे गुणस्थानमें नहीं पहुँचता । तीर्थकरकी सत्तावाला सम्यक्त्वसे रहित कभी नहीं होता । केवल इस विवशतामें ही कि जबकि सम्यक्त्वसे पहिले नरकायुका बन्ध कर लिया हो पुनः क्षायिकसम्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्व प्राप्तकर लेवे और तीर्थकर प्रकृतिका भी बंध कर लेवे तो वह मरण समयमें सम्यक्त्वसे च्युत हो जाता है सो केवल ३अन्तमूर्तको वियोग होता है । ऐसा जीव सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थानमें व सासादनमें तो किसी भी प्रकार नहीं जाता ।

इस गुणस्थानमें सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, ६ पर्याप्तियां, १० प्राण, ४ संज्ञा, गति ४, इन्द्रियजाति पञ्चेन्द्रिय, व्रसकाय, योग १०, वेद ३, कपाय २१ होती हैं ।

सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थानमें ज्ञान ३ मिश्र होते हैं । मम्यग्मिध्यादृष्टिके परिणाम सम्यक् व मिध्या मिश्ररूप हैं अतएव उसके ज्ञानको भी मिश्रज्ञान समझना चाहिये ।

इस गुणस्थानमें असंयम, दर्शन २, लैश्या ६, भव्यत्व, सम्यग्मिध्यात्व, संज्ञी, आहारक होते हैं । उपयोग दोनों क्रमशः होते हैं ।

मिश्रगुणस्थानमें ध्यान ६ होते हैं किन्हीं आचार्यों के मतसे ८ माने गये हैं। आर्तध्यान ४, रौद्रध्यान ४ व आद्वाविचय धर्म्य ध्यान ।

मिश्रमें आस्था—अदिरिति १२, कपाय २१; योग १० इस प्रकार सब ३३ होते हैं ।

मिश्रमें भाव कमसे कम २१ और अधिकसे अधिक २८ होते हैं । नाना जीवोंकी अपेक्षासे ३२ भाव होते हैं ।

सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके देहकी अवगाहना घनांगुल के संख्यातर्वे भागसे लेकर १००० योजन तक की होती है ।

सम्यग्मिध्यादृष्टियोंका निवास लोकके असंख्यातर्वे भागमें है ।

इस गुणस्थानका काल अन्मुहूर्त ही है किन्तु नाना जीवकी अपेक्षासे वे अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातर्वे भाग काल तक निरंतर बने रह सकते हैं ।

इस लोकमें कोई भी सम्यग्मिध्यादृष्टि जीव न हो ऐसा समय आ सकता है तो कभीसे कम एक समय और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातर्में भाग काल तक ।

मिश्र गुणस्थानमें समस्त बन्ध योग्य १२० प्रकृतियोंमें से ७४का ही बंध होता है, मिध्यात्ममें व्युच्छित १६

प्रकृति और सासादनमें व्युच्छिन्न अनंतानुबन्धी४, निद्रा-निन्द्रा, प्रचलाप्रचलास्त्यानुद्दिष्टि, द्रुभंग, दुस्वर, अनादेय, बीचके ४ सुरथान व ४ संहनन, अप्रश्निवैष्णवोगति, स्त्री-वंद, लीचगोत्र, तिर्यगति तिर्यगत्यानुपूर्वी, उद्योत तिर्यगायु ये २५ प्रकृति तथा तीर्थकरप्रकृति, आहारकद्विके ४ मनुष्यायु और देवायु इन ४६ प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता । यह नाना जीवकी अपेक्षासे है ।

इस गुणस्थानमें १०० प्रकृतियोंका उदय नाना जीव की अपेक्षासे है मिध्यात्वमें उदयव्युच्छिन्न ५ प्रकृति, सासादनमें व्युच्छिन्न अनंतानुबन्धी ४, एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ये ६, सम्यक्प्रकृति, तीर्थ-प्रश्निवैष्णवी, आहारकद्विक, चारों आनुपूर्वी इसप्रकार २२ प्रकृतियोंका उदय इस गुणस्थानमें नहीं है ।

मिश्र गुणस्थानमें सच्च नाना जीवोंकी अपेक्षासे १४७ प्रकृतियोंका है । इसमें तीर्थकरप्रकृतिका सच्च नहीं एक जीवकी अपेक्षा नानाप्रकार के जीव होनेसे सच्चके बंध के ब उदयके भी कुछ नानाप्रकार हैं ।

सम्यग्मिध्यात्व, मिश्रसम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यादृष्टि, उभयदृष्टि, मिश्रदृष्टि ये सब एकार्थक है ।

इसप्रकार सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थानका वर्णन करके अब अविरत सम्यक्त्व गुणस्थानका वर्णन करते हैं ।

## अविरत सम्यक्त्व

जहाँ सम्यग्दर्शन तो प्रकट होगया है परन्तु एक देश या सर्व देश किसी भी प्रकारका व्रत (संयम) न हुआ हो उसे अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान कहते हैं और अविरत सम्यक्त्व गुणस्थानवर्ती जीवको अविरत सम्यग्दृष्टि कहते हैं। इस गुणस्थानके विशेष परिज्ञानकेलिये प्रथम कुछ अविरत सम्यग्दृष्टियों के प्रकार कहते हैं।

आद्य प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि— अनादि मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व अनंगानुबंधी ४ इन ५ प्रकृतियों के उपशम से उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न करता है तब वह आद्य प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि-प्रथमोपशमसम्यक्त्वके परिणामसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व के प्रथम समयमें ही मिथ्यात्व के तीन भाग होते हैं मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्‌प्रकृतिसो प्रथमोपशम सम्यक्त्वके पश्चात् यदि सम्यक्‌प्रकृतिका उदय आजावे और शेष ६ प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय व सदवस्थारूप उपशम रहे इम स्थितिके निमित्तसे उत्पन्न हुए सम्यक्त्ववाले जीवको प्रथमोपशमसम्यक्त्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

मिथ्यात्वागतवेदकसम्यग्दृष्टि—२८ की सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके सम्यक्‌प्रकृतिका उदय व शेषका उदयाभावी

क्षय व उपशम रहे इस स्थितिके निमित्तसे उत्पन्न हुए सम्यक्त्ववाले जीवको मिथ्यात्वागतवेदकसम्यग्दृष्टि कहते हैं

सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि— सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके पश्चात् उक्त स्थितिके निमित्तसे उत्पन्न हुए सम्यक्त्ववाले जीव को सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि कहते हैं ।

द्वितीयोपशमागत वेदक सम्यग्दृष्टि— उपशमश्रेणिसे उतरे हुए द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिके चौथेसे सातवें गुणस्थानतकमें यदि सम्यक्प्रकृतिका उदय आजावे तो उसे द्वितीयं पशभागतवेदकसम्यग्दृष्टि कहते हैं ।

कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि-वेदन्तस्यप्त्वे जोव सप्तक्षय प्रारंभ करता है तो अनंतानुबन्धीका विसंयोजनाक्षयकरके व मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय करके सम्यक्प्रकृतिके अन्तिमस्थितिकांडकका धात कर उकता है तबसे वहक्षायिक सम्यक्प्रत्यक्षोनेके पहिले तक कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिक हलाता है २८ सत्प्रकृतिकमिथ्यात्वागत प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि-२८ मोह प्रकृतिकी सत्तावाले सादि मिथ्यग्न्तिके प्रथमोपशम-सम्यत्व उत्पन्न हो तो वह २८ सत्प्रकृतिक मिथ्यात्वागत प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि है ।

उद्देलितसम्यक्त्वमिथ्यात्वागत प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि २८ प्रकृतिकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जब सम्यक्की उद्देल

ना कर चुके तब २७ का सत्ता रहती है उस समय जिसके प्रथमोपशमसम्यक्त्व उत्पन्न हो उसे उद्देलितसम्यक्त्वमिथ्यात्वागत प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि कहते हैं ।

उद्देलितद्वयमिथ्यात्वागत प्रथमोपशम सम्यग्मिथ्यादृष्टि—जो सम्यक्प्रकृति व सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देलना कर चुका है उमके २६ की सत्ता हो गई उमके ५ प्रकृतिके उपशमसे उपशमसम्यक्त्व उत्पन्न हो तो उसे उद्देलितद्वयमिथ्यात्वागत प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि कहते हैं ।

सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि—सम्यग्मिथ्यागुणस्थानसे आये हुए वेदकसम्यग्दृष्टि को सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि कहते हैं ।

२३ की सत्तावाला वेदकसम्यग्दृष्टि अनंतानुबन्धीके ज्ञयके बाद जेब मिथ्यात्वप्रकृतिका ज्ञय करदेता है तब वह ३३ की सत्तावाला वेदकसम्यग्दृष्टि है ।

२२की सत्तावाला वेदकसम्यग्दृष्टि-उक्तजीव जब सम्यग्मिथ्यात्वकीभी ज्ञयकरदेता है तब यह २२की सत्तावाला वेदकसम्यग्दृष्टि

क्षायिक सम्यग्दृष्टि—उक्त जीव जब सम्यक्प्रकृतिका भी पूर्ण ज्ञय कर देता है तब वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि है । उमके २१ मोहप्रकृतिकी सत्ता है इस गुणस्थानमें ।

द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि—वेदकसम्यग्दृष्टि जीव जब साती प्रकृतियोंका उपशम कर देता है तब उसे द्वितीयोपशम

सम्यग्दृष्टि कहते हैं। इसके अनंतानुबन्धी का विसंयोजन ही होती है अतः यह २४ प्रकृतिकी सत्तावाला है।

अपर्याप्त द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि—द्वितीयोपशम सत्त्वके कालमें ही मरण होजावे तो वह केवल देवगतिमें उत्पन्न होता है और वह द्वितीयोपशम शरीरपर्याप्ति होने पहिले नष्ट होजाता है ऐसे जीवको अपर्याप्त द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि कहते हैं।

अपर्याप्त वेदक सम्यग्दृष्टि—वेदक सम्यक्त्वमें मरण होजावे तो वेदक सम्यक्त्व अपर्याप्त अवस्थामें ही रहता है यह जीव कर्मभूमिया व भोगभूमिया मनुष्य, भोगभूमिया तिर्यक्ष व वैमनिक देवमें ही मिलेगा। प्रथम नरकके नारकी भी अपर्याप्त अवस्थामें वेदकसम्यक्त्वग्दृष्टि रह सकते हैं वह वेदक सम्यक्त्वअपर्याप्त अवस्थाके बाद भी वर रह सकता है।

अपर्याप्त क्षायिक सम्यग्दृष्टि—क्षायिक सम्यग्दृष्टि का मरण हो तो वह बैमानिक देवोंमें जन्म लेता है किन्तु यदि सम्यक्त्वसे पहिले नरकायु, तिर्यक्षायु, मनुष्यायु आंलों ही तो क्रमशः पहिले नरक, भोगभूमिया तिर्यक्ष, भोगभूमिया मनुष्यमें उत्पन्न होंगे। यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि नारकों व देव है तो वह मनुष्यगति में ही उत्पन्न होगा। जीव अपर्याप्तके पश्चात् भी क्षायिकसम्यग्दृष्टि होने हैं। य

सम्यकत्व कभी भी नहीं छूटता ।

दर्शनमोहक्षपणाग्रस्थापकवेदकसम्यग्दृष्टि अधःकरणके प्रथमसमयसे लेकर जब तक यह वेदक सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्वका सम्यक्प्रकृतिमें संक्षण करता है तब तक वह दर्शनमोहक्षपणाग्रस्थापक वेदकसम्यग्दृष्टि हैं । दर्शनमोहोपशामनाग्रस्थापक वेदकसम्यग्दृष्टि— अधःकरण के प्रथम समयसे लेकर समस्त दर्शनमोहका अन्तरकरण कर चुकने तक यह जीव दर्शनमोहोपशामनाप्रतिष्ठापक वेदक सम्यग्दृष्टि जीव है इसका द्वितीयोपशम उत्पन्न करनेसे पहले मरण नहीं होता । द्वितीयोपशमके कालमें मरण भी हो सकता ।

अनंतानुवन्धीविसंयोजक वेदकसम्यग्दृष्टि-दर्शनमोहकी क्षपणा करता हुआ जीव पहले करणत्रयद्वारा अनंतानुवन्धीका विसंयोजन करता है उसे अनंतानुवन्धी विमयो-सम्यग्दृष्टि जीव कहते हैं । दर्शनमोहकी उपशामना करने-वाला वेदक सम्यग्दृष्टि अनंतानुवन्धी विमयोजक वेदकसम्यग्दृष्टि है ।

इसी प्रकार अन्य अविरतसम्यग्दृष्टियों की चिन्तना कर लेनी चाहिए । अब प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम, वेदक व क्षायिक सम्यकत्व होनेके अन्तमुर्हूर्त पहिलेकी अवस्थाका वर्णन क्रमशः करते हैं—

प्रथमोपशमसम्यक्त्व—जब जीवका अधिकसे अधि  
अद्वृपुद्गल परिवर्तनकाल मंसारका शेष रहता है तब य  
मम्यक्त्व प्राप्त करने के योग्य है। सो इस कालेके भीतरव  
भी जब प्रायोग्यललिध केद्वारा सबकर्मों की अधिक  
अधिक स्थिति अन्तःकोटाकोटि सागरकी ही रह जाती ।  
तब जो भव्यजीव होगा वह अधःकरण परिणामको करत  
है। अधःकरण परिणामका विवरण सातवें गुणस्थानवं  
प्रकरणमें करेंगे। यहां प्रकरणवश प्रायोग्यलब्धिमें होनेवाले  
३४ बंधापसरणों को कहते हैं।

प्रायोग्यलब्धिमें विशुद्धिके बढ़नेपर जीव अन्तः  
कोटाकोटी सागरकी स्थितिको बांधता है इसके पश्चात  
प्रत्येक अल्प अन्तर्मुहूर्तों में पल्यके संख्यातवें भाग कम  
कम कर करके बांधता है सो जब पृथक्त्वशत (३००व-  
६०० के बीच) सागर कम कर देता है तब नरकायुका  
बंधविच्छेद हो जाता है इसी तरह प्रत्येक पृथक्त्वशत सा-  
गर कम होने पर निम्नलिखित बंधापसरण होते हैं—(२)  
तिर्थगायु , (३) मनुष्यायु , ४ देवायु , ५ नरकगति नर-  
कन्यानुशर्वी, ६ सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण (संयुक्त), ७ सूक्ष्म  
अपर्याप्त प्रत्येक ८ वादर अपर्याप्त साधारण (सं०) ९ वालर  
अपर्याप्त प्रत्येक (सं०) १० द्वीन्द्रियजाति , अपर्याप्त (सं०)  
११ त्रीन्द्रिय जाति अपर्याप्त (सं०) १२ चतुरिन्द्रि जाति ,

अपर्याप्ति (सं०) १३ असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय जाति अपर्वाप्ति सं०)  
 १४ संही पञ्चान्द्रिय अपर्याप्ति (सं०) १५ सूक्ष्म पर्याप्ति सा-  
 धारणा (सं०) १६ सूक्ष्म पर्याप्ति प्रत्येक (सं०) १७ वादृर  
 पर्याप्ति साधारणा (सं०) १८ वादृर पर्याप्ति प्रत्येक एकेन्द्रिय  
 आतोप स्थावर (सं०) १९ द्वीन्द्रियजाति पर्याप्ति (सं०) २०  
 शीन्द्रियजाति पर्याप्ति (सं०) २१ चतुरन्द्रिय जाति पर्याप्ति  
 (सं०) २२ असंज्ञी पञ्चेम्द्रियजाति पर्याप्ति (सं०) २३ ति-  
 र्यग्निति तिर्यग्रात्यानुपूर्वी उद्योत , २४ नीच गोत्र २५  
 अप्रेशसंविहायोगति दुर्भग दुःखर अनादेय , २६ हुंडक  
 संस्थान असंप्राप्तसुपाटिका संहनन २७ नपुंसकवेद २८  
 वामनसंस्थान कीलितसंहनन , २९ कुब्जकमंस्थान अद्व-  
 नोराच संहनन , ३० ल्लीवेद ३१ स्वातीसंस्थान नाराच  
 संहनन ३२ न्यग्रोष्टाष्टाष्टासंध्यान नज्जनाराचसंहनन  
 ३३ मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी औदारिक शरीर औ-  
 दारिक अक्षीपाङ्ग , वज्रवृषभनाराचसंहनन .३४ असाता  
 वेदनीय , अरति , शोक , अस्थिर , अशुभ , अयशःकीर्ति  
 इस प्रकार प्राणोष्टाष्टाष्टामे ३४ बार में उक्त ३४ प्रकार से  
 वंशका विनाश होता है। इनमें कितनो ऐसी प्रकृतियां भी  
 हैं जिनका सम्यक्त्व होने के बाद भी वध होने लगता।  
 एवं यहाँ इनमें सम्यक्त्व को बन्ध रुक जाता है। अभव्य  
 मी ज्ञानव्यवस्था पाकर इना कार्य कर सकता है वह आगे

नहीं चलता ।

इस प्रकार बंधापसरणों को करके सज्जी पश्चैन्द्रिय पर्याप्त विशुद्ध भव्य मिथ्यादृष्टि अधःप्रवक्तकरणको कल सकता है पश्चात् अपूर्वकरण पुनः अनिवृत्तिकरण परिणाम को करता है अपूर्वकरणका वर्णन द वें गुणस्थानमें व अनिवृत्तिकरणका वर्णन नवमें गुणस्थामें प्रकरणमें होगा ।

अपूर्वकरणसे लेकर अनिवृत्तिकरणके संख्यात भाग कालतक जीव कर्मों कास्थितिघात अनुभागघात भी करता है पश्चा इसके अतिरिक्त अन्तरकरण भी करता है अथात् अन्तर्षुद्धा अनंतरकी स्थितिमें जो दर्शनमोहकर्म है उसको कुछको अन्तिममें आवली को छोड़कर पहिली स्थितिमें और कुछ को अन्तरकालकेबादका द्वितीयस्थितिमें लादेता है इस कारण अब जिस समय उपशम्समयकल्पर होगा उस समय स्थितिका दर्शनमोहर्ही सचामें नहीं रहेगा । प्रश्नस्थितिमें कर्म लाने को आगाल कहते हैं और द्वितीयस्थितिमें कर्म लानेको प्रत्यागाल कहते हैं ।

अन्तरकरण कर चुकनेके पश्चात् उदयावली समाप्त होते ही प्रश्नमोपशम्सत्वको उत्पन्न करता है और उस ही प्रश्नम समयमें उपशम्सको प्रश्न मिथ्यात्वके तीन भाग करता—कुछ मिथ्यात्वही रहजाता, कुछ सम्यमिथ्यास्त्रहृष्ट

परिणम जाता है, कुछ सम्यक् प्रकृतिरूप परिणम जाता है। अब यह प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि कहलाता है। इसकाकाल अन्तमुर्हूर्त है।

**द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि**—वेदक सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकारसे अधःकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण परिणामोंको करता है किन्तु २ बार तीनों करणोंको करना है, पहिले तीन करण द्वारा अनंतानुबन्धीकी विसंयोजना (अप्रत्याख्यानावरण रूप कर देना) करता है और दूसरे करणत्रयों से उक्त प्रकारसे अन्तरकरण व उपशम करता है। यह जीव सातों प्रकृतियोंका उपशम करता है।

**वेदकसम्यग्दृष्टि**—प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि या द्वितीयो-सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक् प्रकृति उदयमें आनेपर वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है। २८ ग्रकृतिकी सत्तावाले वेदकयोग्य-मिथ्यात्वके अनंतर भी वेदक सम्यग्दृष्टि होता है और उसे वेदक सम्यक्त्व उत्पन्न करनेके लिये अधःकरण व अपूर्वकरण ये दो करण करना आवश्यक है।

**क्षायिकसम्यग्दृष्टि**—वेदकसम्यग्दृष्टि जीव जब दर्शन-मोहकीक्षयणा को उद्यत होता है तब वह पहिले करण-त्रयके द्वारा अनंतानुबन्धी कीविसंयोजना करके क्षय कर देता है पुनः करणत्रयके द्वारा मिथ्यात्वको सम्यग्मिथ्यात्वरूपकरके और सम्यग्मिथ्यात्वको सम्यवत्व प्रकृति-

रूप करके पश्चात् तीनोंका द्वय करदेता है तब यह ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि होता है । ज्ञायिक सम्यक्त्व का का अनन्त है यह कभी नष्ट नहीं होगा । इस सम्यक्त्वमें रह हुए संसारका काल कुछ अधिक ३३ सागरहै । यह आजिसभवमें ज्ञायिक सम्यक्त्व किया उसी भवसे या तीसरे मोक्ष जाता है । यदि ज्ञायिक सम्यक्त्वसे पहले मनुष्या बांधली हो या तिर्यग्नायु बांध ली हो तो भोगभूमिमें उत्त होकर फिर देवमें जन्म लेकर पश्चात् कर्मभूमि होकर मोजावेगा इस प्रकार चौथे भवसे जासकता है इससे अधि भव किसी भी परिस्थितिमें नहीं हो सकते । सम्यक्त्वसे पहले नरकायु बांध ली हो तो नरकमें उत्पन्न होकर वहांसे मनुष्य होकर मोक्ष चला जावेगा यहां भी तीसरे भव से मोक्ष जावेगा ।

ज्ञायिकसम्यक्त्वको वेदक सम्यग्दृष्टि जीव ही केवल या श्रुतकेवलीके पादमूलमें उत्पन्न करता है । यदि वा स्वयं श्रुतकेवली हो तो विना पादमूलके भी कर लेता है

इस गुणस्थानमें भैनीपंचेन्द्रिय पर्याप्त सैनी पञ्चरिन्द्रिय अपर्याप्त होते हैं । पर्याप्तियां ६ व ६ अपर्याप्तियां प्राण १० व ७, संज्ञा ४ में कोई एक, जाति पञ्चेन्द्रिय व काय त्रसकाय होते हैं ।

इस गुणस्थानमें योग १३ होते हैं परन्तु एक जीवमें

४ मनोयोग ४ वचनयोग ये ८ तथा औदारिककाययोग या वैक्रियककाययोग इस तरह अपर्याप्तमें औदारिकमिश्रकाययोग या वैक्रियकमिश्रकाययोग ऐसे १ व कार्मणकाययोगसहित २ होते हैं। एक समयमें एक योग होता है।

इस गुणस्थानमें वेद तीनोंमें, १ कषाय २१, एक जीवमें योग्यतया १६ एकदा ८-७-६, होते हैं। ज्ञान २ या ३ उपयोगसे एकदा एक, असंयम दर्शनमें ३ या २ एकदा उपयोग से एक। लेश्या ६ एकदा एक। भव्यत्व। सम्यक्त्वमें ३ एकदा एक संगी। आहारक या नाहारक होते हैं।

इस गुणस्थानमें उपयोग दोनों क्रमशः होते हैं, ध्यान ११ होते हैं किन्तु एकदा एक होता है। आस्त्रव ४६ होते हैं, एक जीवमें कमसे कम ६व अधिमसे अधिक १६ होते हैं।

इस गुणस्थानमें भाव ३६ होते हैं, एक जीवमें कम से कम २२ व अधिकसे अधिक २४ या २६ होते हैं।

अविरत सम्यग्दृष्टि जीवके देहकी अवगाहना संख्यात घनाड्गुलसे १००० योजन तक की है।

येजीव सब पल्योपमके असंख्यातवे भागप्रमाण हैं।

इनका अवास केत्र लोकका असंख्यातवा भाग है किन्तु उपपाद आदि प्रकारोंसे ८ बटे १४, व ८ बटा १२ राजू केत्र इनके द्वारा स्पर्श किया हुआ है।

असंयतसम्यग्विष्टसे शून्य कोई भी समय न हुआ न होगा । ये सर्वकाल पाये जाते हैं । किन्तु एक जीव अपेक्षा अविरत सम्यग्विष्ट जीव कमसे कम अन्तर्मुहूर्त तक रहता है और अधिकसे अधिक रात्रिद्वय ३३ सार रहता है ।

एक जीव असंयत सम्यग्विष्ट अपने गुणस्थान छोड़दे और पश्चात् इसी गुणस्थानमें आवेतो वह बीच अन्तर कमसे कम अन्तर्मुहूर्त होगा व अधिकसे अधिक कु (अन्तर्मुहूर्तकम) अद्वृपुद्गलपरिवर्तनकाल तक हो सकता

इस गुणस्थानमें गति आदिके अनुसार विविध कार का कर्मोंका बंध, उदय व सन्व होता है किन्तु य विस्तारभयसे मात्र सामान्यालापसे बंधादिका बर करते हैं ।

इस गुणस्थानमें बंध ७७ प्रकृतियोंका हो सकता १२० बंध योग्यमें प्रथमगुणस्थानीय बंधव्युच्छब्द १६, तीयबंधव्युच्छब्द २५, इस तरह ४१ तथा आहारकशरी आहारकाङ्गोपाङ्ग इन ४३ का बंध नहीं होता ।

इस गुणस्थानमें उदय १०४ प्रकृतियों का हो स ता है, १२२ बंधयोग्यमें प्रथम उदयव्युच्छब्द ५, द्वित उदयव्युच्छब्द ६, तृतीयउदयव्युच्छब्द १, तीर्थकर, आह कशरीर व आहारकाङ्गोपाङ्ग इन १८ प्रकृतियोंका उ

## नहीं होता

इस गुणस्थानमें सच्च सामान्यालाप से १४८ है परन्तु द्वितीयोपशमसम्बन्धपृष्ठिके १४४ व क्षायिक सम्बन्धपृष्ठिके १४१ प्रकृतियोंका है। गति आदिकी अपेक्षा तथ एक जीवकी अपेक्षा सच्च अनेक प्रकार से है।

इस गुणस्थान दर्शन मोहके उपशमका या क्षयोपशमका या क्षयका निमित्त है इसलिये इसमें औपशमिक भाव क्षायोपशमिक भाव व क्षायिक भाव होता है व निमित्त मोहका कहलाता है।

औपशमिक भावमें सम्यक्तवधात्<sup>५</sup> कक्या<sup>७</sup> प्रकृतियोंका उपशम क भावमें ७ प्रकृतिका क्षय है। क्षायोपशमिक भावमें मिथ्यात्व, सम्यग्निध्यात्व, अनंतानुबंधी<sup>८</sup> इन छह का उदयाभावी क्षय व सद्वस्थारूप उपशम व सम्यक प्रकृति का उदय है।

सम्यक्तवप्रकृतिके उदय से सम्यक्तवका घात नहीं होता किन्तु चल मलिन अगाढ़ दोष उत्पन्न होते हैं।

वेदक सम्यक्तवके बाद जब द्वितीयोपशम सम्यक्तव या क्षायिक सम्यक्तवका कार्य शुरू हो जाता है तब क्षयोपशममें कुछ विशेषता होता है जैसे कभी ४ का क्षय ३ का उपशम १ का उदय। कभी ५ का क्षय, १ का उपशम, १ का उदय आदि आदि।

द्वितीयोपशमका प्रारंभ करनेवाला अन्तरात्मा  
द्वितीयोपशय उत्पन्न करनेसे पहिले नहीं मरता ।

ज्ञायिकसम्यक्तका प्रारंभ करनेवाला अन्तरात्मा सम्यकप्रतिका भी जब ज्यय शुरू कर देता है उस समय से उसका मरण संभव है सो उस मरण कालने के चार भागोंमें मरण करे तो १-२-३-४ गतियोंमें से किसीमें उत्पन्न हो कर वहां ज्यय पूर्ण कर लेगा ।

जीवका सर्व प्रथम उद्धारका प्रारंभ इसी गुणस्थान से होता है अनादि मिथ्यादृष्टि जीवका मिथ्यात्वके पश्चात् उसका सुधार हो तो यह गुणस्थान प्राप्त होता है उसे । यद्यपि ऐसा भी हो सकता है कि सम्यक्त्व व देशसंयम तथा सम्यक्त्व व सकलसंयम एक साथ हो जावे तथापि सम्यक्त्व तो प्रथमोपशम होता ही है ।

सम्यक्त्व बहुत अमूल्य निज वैभव है इमकी धारणा ही जीवके कल्याणका मंगलाचरण है । अनेक ग्रयत्नसे इमकी प्राप्तिकेलिये पुरुषार्थ करो । इसकी प्राप्तिका पुरुषार्थ सर्वप्रथम तच्चाभ्यास है इसके प्रसादसे स्व पर का भेद विज्ञान होगा , इसके पश्चात् परसे निवृत्ति व स्वमें रुचि होगी , पुनः समस्त अध्रु व भावोंको छोड़कर ध्रु व निज अभेद चैतन्य स्वभावमें गति होगी इस प्रयोगसे उत्पन्न आत्माकी सद्ज अनाकुलताका अनुभवन होगा । इस-

## देशसंयतगुणस्थान

सही परम शक्ति ग्राम होयी ।

इस प्रकार अविरत सम्यक्त्वं गुणस्थान वर्णन करके इन देशपत् गुणस्थानका वर्णन करते हैं ।

जहाँ सम्यज्ञके प्रकृति होया हो और देशसंयम भी स्वप्न हो जावे उस स्थिति में देशसंयत गुणस्थान कहते हैं। इसका दूसरा नाम संयता संयत भी है जहाँ अल्प संयम व अधिक संयम हो उसे संयमासंयम कहते हैं ।

इस गुणस्थानमें त्रिसञ्चितिकी तोविरति है और शेष अविरतिकी विरति नहीं है ।

यह गुणस्थान अप्रत्याख्यानावरणनामक चालिका के लिए लोकसंख्यासे देखा है अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणके उदयाभावी, उदयके सदृक्ष्यारूप उपशम तथा उपशमावरणके उदयके निमित्तसे होता है। इसमें अस्त्र मोहक त्रिसञ्चिति है और माव द्वायोप देखा है ।

इसमें उपशम ११ प्रकारमें देखा है- १ रुद्रादिग्नि, २ रुद्रादिग्निश्चिन्मिति, ३ रुद्रादिग्निश्चिन्मिति, ४ रुद्रादिग्निश्चिन्मिति, ५ रुद्रादिग्निश्चिन्मिति, ६ रुद्रादिग्निश्चिन्मिति, ७ रुद्रादिग्निश्चिन्मिति, ८ रुद्रादिग्निश्चिन्मिति, ९ रुद्रादिग्निश्चिन्मिति, १० रुद्रादिग्निश्चिन्मिति, ११ रुद्रादिग्निश्चिन्मिति ।

निरतिचार सम्यग्दर्शन धारण करने व अन्याय एवं  
अभृत्यके त्यागको दर्शन प्रतिमा कहते हैं ।

निरतिचार अणुव्रत ५, गुणव्रत ३, शिक्षाव्रत ४ इति  
प्रकार बारह व्रतोंके पालन करनेको व्रत प्रतिमा कहते हैं

प्रातः, मध्याह्न व सायं २ घड़ी से ६ घड़ी तक  
निरतिचार सामायिक करनेको सामायिक प्रतिमा कहते

अष्टमी चतुर्दर्शीको यथाशक्ति निरतिचार प्रोषध  
पूर्वक उपवास करनेको प्रोषध प्रतिमा कहते हैं ।

हरी बनस्पति, कच्चा फल आदि सचित्त वस्तुके  
खानेके त्याग करनेको सचित्तत्याग प्रतिमा कहते हैं ।

कृत कारित अनुमोदनासे रात्रिभोजनके त्याग व  
दिनमें मैथुनवार्ताके त्यागको रात्रिभुक्ति या दिवामैथुन  
त्याग कहते हैं ।

पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करनेको ब्रह्मचर्यप्रतिमा कहते हैं  
व्यापारादि आरंभके त्यागको आरंभत्याग प्रति-  
मा कहते हैं ।

वस्त्र अल्प पात्रके अतिरिक्त सब परिग्रहके त्याग  
को परिग्रहविरति कहते हैं । ग्रहकार्यकी अनुमोदनाके  
त्यागको अनुमतित्याग प्रतिमा कहते हैं ।

निमित्तसे बनाये गये आहारके ग्रहण न करनेके

नियमको उद्दिष्टत्याग प्रतिमा कहते हैं । इसके २भेद हैं १ कुल्लक, २ ऐलक ।

सम्यक्त्वके अनन्तर इस गुणस्थानके उत्पन्न करनेको पहिले अधःकरण अपूर्वकरण ये २करण आवश्यक हैं ।

उपशम सम्यक्त्वके साथ इस गुणस्थानके उत्पन्न करने केलिये पहिले ३ करण आवश्यक हैं ।

वेदक सम्यक्त्वके साथ इस गुणस्थानके उत्पन्न करने केलिये पहिले दो करण आवश्यक हैं ।

उक्त आवश्यक करण परिणामका काल समाप्त होते ही जोव संयतासंयत हो जाता है ।

संयमा संयम लब्धिके स्थान अनगिनते है, उनमें मर्व जघन्य स्थान किसीके भी नहीं होते उससे अमंख्यात गुणे विशुद्ध संयमासंयम संयमासंयमसे मिथ्यान्वयमें गिरनेके अभिमुख अतिसंक्लिष्टपरिणामी मनुष्यके होते हैं । यही मंभव जघन्यसंयमासंयम है । इससे अनन्तगुणा संयमासंयम स्थान मिथ्यात्व जानेके अभिमुख अतिसंक्लिष्ट तिर्यच देशसंयतका संभव सर्वजघन्य है । उससे अनन्तगुणा संयमासंयमसे गिरकर चौथे गुणस्थानमें जानेवाले तिर्यञ्चोंके होता है । उससे अनन्तगुणा संयमासंयमसे गिरकर चौथे गुणस्थानमें जानेवाले मनुष्योंके होता है । मिथ्यात्वसे संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले प्रथमसंमयवर्ती वि-शुद्ध

संयतासंयत मनुष्यके उससे अनंतगुणा संयमासंयम स्थान है मिथ्यात्वसे संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले प्रथम समयवर्ती विशुद्ध संयतासंयत तिर्यञ्चके उससे अनंतगुणा है । असंयत वेदकसम्यक्त्वसे चढ़नेवाले प्रथमसमयवर्ती देशसंयत तिर्यञ्चके अनंतगुणा संयमासंयम स्थान है । उससे अनंतगुणा संयमासंयम स्थान असंयत सम्यक्त्वसे चढ़नेवाले विशुद्ध प्रथम समयवर्ती संयतासंयत मनुष्यका है । उससे अनंतगुणा संयमासंयम स्थान मिथ्यात्वसे चढ़ते हुए अतिविशुद्ध द्वितीयसमयवर्ती संयतासंयत मनुष्यका है । उससे अनंतगुणा संयमासंयम स्थान मिथ्यात्वसे चढ़नेवाले अतिविशुद्ध द्वितीय समयवर्ती संयतासंयत तिर्यञ्चका है । उससे अनंतगुणा संयमा संयमस्थान सर्वविशुद्ध चढ़े हुए संयतासंयत तिर्यञ्चका उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धिस्थान है । उससे अनंतगुणा संयमासंयम स्थान सर्वविशुद्ध चढे हुए संयतासंयत मनुष्यका उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धिस्थान है ।

गिरते हुएके अंतिम स्थानका नाम प्रतिपात स्थान है । चढ़ते हुएके प्रथम स्थानका नाम प्रयिप्रद्यमानस्थान है । इनके अतिरिक्त सब स्थानोंका नाम अप्रतिपात अप्रतिपद्यमान स्थान है ।

इस गुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षासे गति नारक तिर्यञ्चमें १, ज्ञाति पञ्चेन्द्रिय, त्रिसङ्काय, मनोयोग ४,

वचनयोग ४ औदारिककाययोग १ इस प्रकार हमें एकदा एक, तीन वेदमें से १, १७ कषायमें से एकदा ७ या ६ या ५, ज्ञान ३ या १ में एकदा उपयोग से १, संयमा-संयम, दर्शन २ या ३ में उपयोगसे एकदा १, लेश्या ३ शुभमें एकदा एक, भव्यत्व होता है ।

इस गुणस्थानमें सम्यक्त्व प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम, वेदक ज्ञायिक इनमें कोई एक होता है ।

संयतासंयत जीव संज्ञी, आहारक, क्रमशः दोनों उपयोगवाला होता है ।

इस गुणस्थानमें ध्यान आर्तध्यान ४ रौद्रध्यान ४ धर्मध्यान ३ इस प्रकार ११ में एकदा एक होता है । आस्त्र ३७ में कमसे कम द व अधिकसे अधिक १४ होते हैं । भाव ३१में एकदा २२ या २४ होते हैं ।

संयतासंयत जीव सैनी पञ्चन्द्रिय पर्याप्त, छहों पर्याप्ति वाले, १० प्राणसंयुक्त व ४ संज्ञावाले होते हैं ।

संयतासंयत जीवके देहकी अवगाहना संख्यात घनांगुलसे लेकर एक हजार योजन तक की होती है ।

भोगभूमिया मनुष्य, तिर्यचोंके यह गुणस्थान नहीं होता है । विदेहक्षेत्रमें, चतुर्थ पञ्चमकालके भरत ऐरावत-क्षेत्रमें, लवण्यसमुद्र, कालोदधिसमुद्र, उत्तराद्व॑ स्वयंभूरमण्डीप, स्वयंभूरमसण्मुद्रमें जन्मे हुए सैनी पञ्चन्द्रिय पर्या-

म तिर्यच्च व मनुष्यके यह गुणस्थान होता है । तिर्यच्च यह गुणस्थान जन्मलेनेके ३ अन्तमुर्हृत् बाद हो सकता परन्तु मनुष्यके जन्मलेनेके बाद द्वर्ष पश्चात् ही यह गुण स्थान हो सकता है ।

इनका आवास लोकके असंख्यातर्वे भागमें है मारणान्तिक समुद्रातकी अपेक्षा ६ बटा १४ राजू लोक व स्पर्श हो जाता है ।

संयतासंयत जीव हमेशा कहीं न कहीं रहते हैं । ए जीव संयतासंयत गुणस्थानमें कमसे कम एक अन्तमुर्हृ रहता है व अधिकसे अधिक तिर्यचकी अपेक्षा ३ अन्तमुर्हृत् कम एक कोटि पूर्वतक व मनुष्यकी अपेक्षा द्वर्ष क एक कोटि पूर्वतक रहता है ।

एक जीव संयतासंयत गुणस्थानसे छूट कर अन गुणस्थानमें रहे और फिर संयतासंयत गुणस्थानमें आ तो इस बीचका अन्तर कमसे कम तो अन्तमुर्हृत् र सकता है और अधिकसे अधिक ११ अन्तमुर्हृत् क अद्भुद्धल परिवर्तन काल तक रह सकता है ।

देशविरतगुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा गति आदि भेदसे नाना प्रकारके कर्मोंका बन्ध उदय सन्च व है परन विस्तारभयसे यहां सामान्यालापसे कहते हैं ।

देशविरतमें ६७ प्रक्रियोंका बन्ध होता है क्यों

यहाँ मिथ्यात्वव्युच्छिन्न १६, सासनव्युच्छिन्न २५, असंयतव्युच्छिन्न अप्रत्याख्यानावरण ४ मनुष्यायुः, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वज्रवृषभ, औदारिक शरीर ये औदारिकाङ्गोपाङ्ग १०व आहारकद्विक इन ५३ प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है ।

इस गुणस्थानमें उदय ८७ प्रकृतियोंका रहता है क्योंकि यहाँ मिथ्यात्वव्युच्छिन्न ५, सासनव्युच्छिन्न ६, सम्यग्मिथ्यात्व १, असंयतमें व्युच्छिन्न नरकायु देवायु नरकगति देवगति वैक्रियक शरीर वैक्रियक अङ्गोपाङ्ग नरक गत्यानुपूर्व्य, तिर्यगत्यानुपूर्व्य, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, देवगत्यानुपूर्व्य, दुर्भग अनादेय, अयशःकीर्ति व अप्रत्याख्यानावरण ४ ये १७, तीर्थकर व आहारकद्विक इन ३५ प्रकृतियों उदय नहीं होता ।

संयतासंयतमें सत्त्व १४७ प्रकृतियोंका रहता है यहाँ नरकायुका सत्त्व नहीं है क्योंकि नारकीके तो यह गुणस्थान है नहीं और जिसने नरकायुका बन्ध करके सत्ता बैना ली हो उसके भी यह गुणस्थान नहीं हो सकता ।

तिर्यञ्चके व्रतप्रतिमा तक के ही परिणाम हो सकते हैं । स्त्रीके ग्यारह प्रतिमामें ऐलक ( आर्यिका ) तक के ही परिणाम हो सकते हैं । पुरुषके ११ प्रतिमा व इस से आगे के भी परिणाम हो सकते हैं ।

इस प्रकार संयतासंयत गुणस्थानका वर्णन ।  
अब छठवें प्रमत्तविरत गुणस्थानका कुछ निरूपण करते

### प्रमत्तविरत गुणस्थान

जो सम्यक्त्व और मकलव्रत (महाव्रत) करि सा  
हो किन्तु संज्वलन कषायका, तीव्र उदय होनेसे प्र  
सहित हो वह प्रमत्तविरत गुणस्थान कहलाता है । इ  
आहार करने, विहार करने, दीक्षा शिक्षा प्रायश्चित्त  
आदि व इनके किल्प करने रूप प्रमाद रहता है ।

प्रमादके मूलमें १५ भेद हैं विकथा ४, कषाय  
इन्द्रियविषय ५, निद्रा १, स्नेह १ । इनके संयोगसे उ  
भेद ८० हो जाते हैं—जैसे १ स्त्रीकथालायी क्रोधी स्प  
नेन्द्रियवशंगतो निद्रालुः स्नेहवान् । २-भोजनकथाला  
क्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतो निद्रालुः स्नेहवान् इत्यादि  
अर्थात् जब विकथा पूर्ण होगया तो विकथा शुरूसे ले अं  
कषाय दूसरी ले और फिर जब इस प्रकार करते करते कष  
पूरी हो जाय तब कषाय शुरूसे ले और इन्द्रियावै  
बदल दें । इसको सुगमतया समझनेकेलिये इस नक्शे  
आश्रय लैवें—

खीकथालापी	भोजनकथालापी	देशकथालापी	राजकथालापी
१	२	३	४
क्रोधी	मानी	मायावी	लोभी
०	४	८	१२

स्पर्शनेन्द्रियवशी	रसनेन्द्रि०	घ्राणेन्द्रि०	चहुरिन्द्रि०	श्रोत्रेन्द्रि०
०	१६	३२	४८	६४

निद्रालु	इस नक्शे से जिस नम्बर का भेद निकालना हो ऊपर ऊपर से नीचे तक पांचों खानों के १-१ ऐसे नाम ले लेवे जिसके आगे के
स्नेहवान्	०

( नीचे के ) अंक जोड़ने पर उतनी संख्या का नम्बर आ जावेगा और जिस भेद का नम्बर जानना हो तो उन नामों के नीचे के अंक जोड़ देवे जो संख्या आवे वह नम्बर हो जावेगा ।

यह गुणस्थान प्रत्याख्यानावरण नामक चारित्र मोहके क्षयोपशमसे होता है इसलिये इसमें भाव क्षयोपशमिक है और निमित्त मोह है । इसमें प्रत्याख्यानावरण के वर्तमान का उदयाभावी क्षय, आगामी का सदवस्था रूप उपशम व संज्वलन क्षयका उदय रहता है, यही

क्षयोपशमकी स्थिति है ।

इस गुणस्थानमें जीव अप्रमत्तविरतगुणस्थानसे आता है तथा इस गुणस्थानवाला ७ वें, ५ वें, ४ थे, २ रे, पहिलेमें भी आसकता है ।

इस गुणस्थानमें जिसके आहारकऋद्धि हो गई है उसके किसी सूच्दम तत्त्वमें शंका आदि होनेपर आहारव शरीर भी प्रकट होता है । यह आहारकशरीर जब तब बनते हुएमें अपर्याप्त रहता है तब तक इस आहारकमिकाययोगीको अपर्याप्त कहते हैं । इस स्थितिमें आहारकवर्गणाओंके ग्रहणके निमित्त परिस्पन्धत होता है ।

इस गुणस्थाने परिहारविशुद्धिधारीके परिहारविशुद्धिचारित्र होता है । इस जीवमें विहार कहते हुए किसी भी प्राणीको रंच भी बाधा नहीं होती चाहे कोई प्राणी नीचे भी आजावे । विहार करते हुएने अल्प समयको वाँ गुणस्थान भी हो जाता है इस अपेक्षासे यह परिहारविशुद्धि सातवेंमें भी मानी गई है ।

जिस मुनिके आहारक, परिहारविशुद्धि, मनःपर्ययज्ञान, उपशमसम्यक्त्व, वेदद्वय (नपुंसकवेद स्त्रीवेद) और वेद इन पांचमें कोई एक हो तो शेष ४ वातें नहं होगी । इनका परस्परमें विरोध है । किन्तु उपशमसम्य

तत्त्वके साथ नपुंसकवेद व स्त्रीवेद हो सकते हैं, तथा द्वितीयोपशमसम्यक्तत्वके साथ मनःपर्ययज्ञान हो सकता है ।

इस गुणस्थानमें गति मनुष्य, जाति पञ्चेन्द्रिय, त्रस्काय, योग ११ पर्यासमें योग्यतया ६ व १० किन्तु एकदा एक, अपर्यासमें १ आहारकमिश्रकाययोग, वेद ३ में कोई एक, परिहारविशुद्धि मनःपर्यज्ञान द्वितीयोपशमसम्यवद्यष्टि व आहारक वालेके पुरुषवेद, कथाय १३ एक जीव में ६-५ ४, ज्ञान २ ३-४, परिहारविशुद्धि व आहारकवालेके २-३, संयम २ परिहारविशुद्धि वालेके ३, दर्शन ३-२, लेश्या ३ में एक, भव्यत्व होते हैं ।

प्रमत्तविरत गुणस्थानमें उपशमसम्यक्तत्व, वेदकसम्यक्तत्व, क्षायिक सम्यक्तत्व ये तीन होते हैं । किन्तु परिहारविशुद्धि व आहारक वालेके वेदकसम्यक्तत्व व क्षायिक सम्यक्तत्व ये २ होते हैं ।

इस गुणस्थान वाले संज्ञी, आहारक, क्रमशः दोनो उपगोंग वाले, निदान बिना ३ अर्तध्यान ४ धर्मध्यान इस तरह ७ ध्यानमें किसीके भी ध्याता होते हैं ।

प्रमत्तविरत गुणस्थानमें २४ आस्त्र होते हैं एक जीवमें ७-६-५ आस्त्र होते हैं । भाव ३ १ होते हैं, एक एक जीवमें कमसे कम २४ व ज्यादहसे २७ होते हैं ।

प्रमत्तविरत साधुवोंके देहकी अवगाहना कमसे कम

३॥ हाथ अधिकामे अधिक ५२५ घनुष । अपर्याप्तिमें अहारकशरीर १ हाथका होता है ।

प्रमत्तविरत साधुवोंके नाना जीवोंकी अपेक्षा ६ प्रकृतियोंका बंध होता है क्योंकि मिथ्यात्वव्युच्छब्द १ सासनव्युच्छब्द २५, असंयतव्युच्छब्द १० व देशमंत व्युच्छब्द प्रत्याख्यानावरण ४ कषाय व आहारकद्विक ३ ५७ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है ।

प्रमत्तविरत साधुवोंके नाना जीवोंकी अपेक्षा ८ प्रकृतियोंका उदय रहता है क्योंकि मिथ्यात्वव्युच्छब्द सासनव्युच्छब्द ६, मिश्रव्युच्छब्द १, असंयतव्युच्छब्द देशमंयतव्युच्छब्द प्रत्याख्यानावरण चार तिर्यग्मति तिर्यगायु उद्योत नीचगोत्र ये ८ व तीर्थकर प्रकृति इन ४१ प्रतियोंका उदय नहीं होता ।

प्रमत्तविरत साधुवोंके सत्त्व १४६ प्रकृतियोंका इनके नरकायु व तिर्यगायुका सत्त्व नहीं है । क्षायिकसम्पदष्टि प्रमत्तविरतके १३६ का सत्त्व है इनके सम्यक्त्वघात ७ प्रकृतियां तिर्यगायु व नरकायु इन ६ प्रकृतियोंका सा नहीं है ।

प्रमत्तगुणस्थानवर्तीं जीवोंका निवास ढाई द्वीप अन्दर ही है किन्तु अन्य अपेक्षाओं (मारणनिजक समुद्रात से मनुष्य लोकसे असंख्यात गुणा क्षेत्र है व लोकका अस

ख्यातवां भाग ही स्पर्शन है ।

प्रमत्तविरत साधुयदा होते हैं । एक जीवकीअपेक्षा इस गुणस्थानका काल जघन्य तो एक समय है । यह समय मरणकी अपेक्षासे है । एक जीवका उत्कृष्ट काल इम गुणस्थानमें अन्तमुर्हृत होते हैं ।

एक प्रमत्तसंयत जीव अपने गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानमें जाकर पुनः इसी गुणस्थानमें आवे तो इस दीन्द्वाका अन्तर जघन्य तो अन्तमुर्हृत होगा और अधिकसे अधिक दस अन्तमुर्हृतकम अर्द्धपुद्दलपरिवर्तनकाल होगा ।

इस गुणस्थानमें पुलाक, वकुश और कुशील ये तीन प्रकारके निर्गन्थ हो सकते हैं ।

इस गुणस्थानमें आचार्य, उपाध्याय और ये तीन ही परमेष्ठी होते हैं । ये परमेष्ठी पांच महाब्रत, तीन गुस्ति, पांच समिति का आचरण करते हैं । दश धर्मका पालन करते हैं इनका अधिक समय भावनावोंके चिन्तवनमें जाता है । २२ परीषहोंको समतासे जीतते हैं । बारह प्रकार का यथायोग्य तप करते हैं । ये महात्मा जब प्रमादयुक्त होते हैं तब प्रमत्तविरत कहलाते हैं । पहिले प्रमादके १५ और अल्पविस्तारसे ८० कहे थे, उन्हें विस्तारसे कहा जावे तो ३७५०० भेद होते हैं वे इस प्रकार हैं—

स्त्रीकथा ०	अनंतांकोध ०	स्पर्शने ०	स्त्यान००	स्नेह
अथकथा १५००	अनंतांमान ६०	स्त्रेने०१०	निद्रानि०२	मोह
भोजन० ३०००	अनंतांमाया१२०	प्राणे०२०	प्रचला०४	
राजकथा ४५००	अनंतालोभ १८०	चक्षु० ३०	निद्रा ६	
चौरकथा ६०००	अप्र०क्रंध ८४०	श्रोत्रे० ४०	प्रचला ८	
वैरवथा ७५००	अप्र०मान ३००	मनो० ५०		
परपाख्यं० ६०००	अप्र०माया ३६०			
देशकथा १०५००	अप्र०लोभ ४८०			
भाषाकथा१२०००	प्रत्या०कोध ४८०			
गुणबंध० १३५००	प्रत्या०मान ५४०			
दैवीकथा १५०००	प्रत्या०माया ६००			
निष्ठुर० १६५००	प्रन्या०लोभ ६६०			
परपैश० १८०००	संज्व०कोध ७८०			
कंदपैकथा१६८००	संज्व०मान ७८०			
देशकाल०२१०००	संज्व०माया ८४०			
भंडकथा २२५००	संज्व०लोभ ६००			
मूर्खकथा २४०००	हास्य ६६०			
आत्मप्र० २५५००	रति १०८०			
परपरि० २७०००	अरति १०८०			
परजुगु० ०८५००	शोक ११४०			
परपीढा ३००००	भय १२००			
कलह ३१५००	जुगुप्सा १२६०			
परिप्रह ३३०००	पुंचेद १३८०			
कृष्णाय० ३४५००	स्त्रीवेद १३८०			
संगीतव० ३६०००	नपुंस०वेद१४४०			

इनमें पहिला मेद हुआ :  
कथालापी अनंतानुबन्धीक्रे  
स्पर्शनेन्द्रियवशी गतः स्त्यान  
द्विगतः स्नेही ।

दूसरा भेद भी इसी त  
केवल स्नेही व जगह कहना में  
तीसरा भेद—स्त्रीकथाल  
अनंतानुबन्धकोधी स्पर्शनेन्द्रि  
वशंगतो निद्रनिद्रागतः स्नेह  
इसी प्रकार क्रमसे लगाते जान  
भेद नाम का नम्बर जानने औं  
नम्बरके नाम जानने की री  
पूर्वोक्त प्रकार है जैसी प्रमाद  
अस्सी भेद में कही गई थी ।  
यह सब प्रमाद पहिले गु

स्थानमें तीव्र है उससे ऊपर ऊपर क्रमसे मंद होता चला गया है।

प्रमत्तविरत नाम होनेसे इसके विशेष प्रमाद नहीं समझना। पहिले गुणस्थानसे छटे गुणस्थान तक सभी प्रमत्त है। छटे गुणस्थानके बाद प्रमाद नहीं रहता और छटेमें अत्यन्त प्रमाद रहता है। जो प्रमत्त होते हुए भी संयत है वे प्रमत्त संयत कहलाते हैं। ३७५०० भेद में प्रमाद हैं उनमें से कुछ ही प्रमाद इस गुणस्थानमें हैं। सब नहीं।

इस प्रकार प्रमत्तविरतका संक्षेपसे वर्णन करके अब अप्रमत्त संयतका वर्णन करते हैं—

### अप्रमत्तविरत गुणवथान

जहां सम्यक्त एवं महाब्रत है तथा संज्वनकषाय के मंद उदयसे प्रमाद भी नहीं है उसे अप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं।

इस गुणस्थान के २ भेद हैं स्वस्थान अप्रमत्तविरत व सातिशय अप्रमत्त विरत।

जो अप्रमत्तविरत आगे गुणस्थानमें जानेका अपूर्व परिणाम नहीं कर रहा और छटेमें जावेगा वह स्वस्थान अप्रमत्तसंयत है। जो छटेमें न जासके किन्तु मरणकर

चौथे में जावेगा वह भी स्वस्थान अप्रमत्तसंयत है । सात से छठे में छठे से सातवें गुणस्थानमें जानेका क्रम संख्या हजार बार बना रहता है ।

जो श्रेणि चढ़नेके अभिमुख है वह सातिशय अप्रमत्त है ।

सबसे पहिले जो अप्रमत्तविरत गुणस्थान होता नह छठे गुणस्थान से नहीं होता क्योंकि छठे गुणस्थान जीव सातवें गुणस्थानसे ही आता है

पहिले, चौथे, पांचवें व छठे इन गुणस्थानोंके पश्चा ही अप्रमत्त संयत गुणस्थान होता है ।

अप्रमत्तविरत साधु छठे में या अपूर्वकरण उपशमन अथवा अपूर्वकरण क्षपकमें जाता है । यदि मरण हो तो चौथे गुणस्थानमें पहुँचता है ।

अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें नाना जीवोंकी अपेक्षा ५६ प्रकृतियोंका बन्ध होता हैं । यहां मिथ्यात्व व्युच्छिन्न १६ सामनव्युच्छिन्न २५, अमयतव्युच्छिन्न १०, देशसंयन-व्युच्छिन्न ४, प्रमत्तसंयत व्युच्छिन्न अस्थिर अशुभ, असातावेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति, शोक ये ६ इसप्रकार प्रमत्तान्त बन्धव्युच्छिन्न ६१ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है ।

इस गुणस्थानमें नानाजीवकी अपेक्षा ७६ प्रकृति-

योंका उदय रहता है , क्योंकि इस में मिथ्यात्वव्युच्छिक्षम ५ , सानव्युच्छिक्षम ६ , मिश्रव्युच्छिक्षम १ , असंयतव्युच्छिक्षम १७ , देशविरतव्युच्छिक्षम ८ , प्रमत्तसंयत व्युच्छिक्षम आहारक शरीर आहारकाङ्गोषाङ्ग स्त्यानगृद्वि निद्रानिद्रा प्रचला प्रचला ये ५ इस प्रकार प्रमत्तान्त उदय व्युच्छिक्षम ४५ व तीर्थकर प्रकृति इन ४३ प्रकृतियोंका उदय नहीं हो सकता ।

अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें सत्त्व १४३ का हो सकता है यहां नरकायु व तिर्यगायु का सत्त्व नहीं है । क्षायिक सम्यग्वृष्टि प्रमत्तविरतके १३६ तक का ही सत्त्व हो सकता है इसके सम्यक्तव घातक ७ प्रकृति व नरकायु तिर्यगायु नहीं है ।

सर्व प्रथम महाव्रत का परिणाम सप्तमगुणस्थानमें होता है : को लकलचारित्र सर्वदेशव्रत सरागचारित्र क्षायोपशमिक चारित्र आदि नामोंसे कहते हैं, सो इस गुणस्थान मेंकदि मिथ्या दृष्टि आवे तो या तो प्रथमोपशम सम्यक्तव के साथ संयमको पावेगा या वेदकसम्यक्तवके साथ संयमकों पावेगा । प्रथमोपशमसम्यक्तव केसाथ संयम पावेतो पहिले तीनों करण परिणाम आवश्यक है यदि वेदकसम्यक्तव के साथपावे तो पहिले अधःकरणश्रूत्वकरण ये दो परिणाम आवश्यक हैं । वेदक सम्यक्तवके साथ संयम पानेवाला जीव २८की ही सत्तावाला था तीनों प्रकारके सम्यदृष्टि असंयत

व संयतासंयत गुणस्थान से संयमको पावे तो भी २ कर ही आवश्यक है ।

सर्वप्रथम अप्रमत्तसंयत होनेके पश्चात् वह सातिश अप्रमत्तविरत अर्थात् ऊपरके गुणस्थानोंमें जानेका पुरुष नहीं कर पाता किन्तु प्रमत्तविरत होता है और प्रमत्तविः से अप्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरतसे प्रमत्तविरत इस प्रकार रूपात् हजार बार परिवर्तन करता है ।

अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें ही द्वितीयोपशमसम्यः की निष्ठापना होती है । चौथे से सातवें गुणस्थानतक कोई भी वेदक सम्यग्दृष्टि जीव तीनों करण परिणामोंके अंतानुवन्धीका विसंयोजन कर सकता है, अनंतानुबं के विसंयोजनके बाद अप्रमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसं अप्रमत्तसंययमें अनेक परावर्त करके अप्रमत्तसंयत तीनों करणोंके द्वारा दर्शन मोहका अन्तर करके उप कर देता है पुनः प्रमत्त विरत अप्रमत्तविरतमें अनेको वृत्त करके कषायके उपशमकेलिये अधःकरण करता इस स्थितिमें यह जीव सातिशय अप्रमत्त कहलाता है । उक्तायिक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयत कषायोंके उद्द लियेभी अधःकरण कर सकता है । यदि कषायोंके उप कार्य करे तो उपशम श्रेणी पर चढ़ेगा व यदि कषायोंके लिये वह करण करे तो न्ययक श्रेणी चढ़ेगा । यह भी

तिशय अप्रमत्तविरत है यहां यह विशेष जानना कि क्षायिक सम्यक्त्वकी चौथे से मात्रे तक में कहीं भी निष्ठापना होती है और उसमें भी पहिले करणत्रयसे विसंयोजना-क्षय पश्चात् अल्प विश्राम करके दर्शनमोहका क्षय किया जाता है ।

क्षायोपशमिक संयममें भी स्थान असंख्यात् लोक प्रमाण है उनमेंसे सर्व जघन्य संयमस्थान उसके है जो अतिसंक्लेश परिणामयुक्त मिथ्यात्वमें गिरनेवाला यह प्रमत्तसंयत जीव ही होता है । उससे अनन्तगुणे संयमका स्थान मिथ्यात्वमें जानेवाले प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट संयम है ।

संयमसे गिरने वाले सभी जीव प्रमत्तविरत समझना चाहिये ।

उस स्थानसे अनन्तगुणेसंयमका स्थान अतिसंक्लिष्ट अविरतसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले संयमी का जघन्यसंयम स्थान है इससे अनन्तगुणे संयमका स्थान योग्य संक्लिष्ट इसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान है । यह भी ग्रन्थाधेष्ट है

उससे अनन्तगुणे संयमस्थान अतिमांक्लिष्ट संयम संयममें आने वाले संयमी का जघन्य संमस्थयान है । योग्यसंक्लेशी इसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान उससे अनन्तगुणा है । यह भी प्रमत्तविरत है ।

उससे अनन्तगुणा संयमस्थान आर्यखन्डसे उत्पन्न

हुए मिश्यादृष्टि मनुष्यके संयत होनेके प्रथमसमयमें हो है । यह अप्रमत्तविरत है ।

उससे अनन्तगुणा संयमस्थान म्लेच्छ खंड उत्पन्न हुये मिश्यादृष्टि मनुष्यके संयत होनेके प्रथम सम में होता है ।

इससे अनंतगुणा देशसंयमी म्लेच्छ मनुष्यके संर के होनेके प्रथम समय में होता है ।

इससे अनन्तगुणा संयमस्थान देशसंयत आर्यमनु के संयत होनेके प्रथम समय में होता है ।

अप्रतिपातप्रतिपद्मानस्थान भी असंख्यातलं प्रमाण है ।

अप्रमत्तगुणस्थानमें सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्यास, पर्यासियाँ । १० प्राण, संज्ञा तीन, गति मनुष्य, जा पञ्चेन्द्रिय, त्रसकाय, योग ६ में एकदा एक, ३ वेद कोई एक, १३ कषायमें एक जीवके ६-५-४, ज्ञान -३-२ में उपयोग एकदा १, संयम २-३, दर्शन २-३ उपयोगसे १, लेश्या ३ में एक, भव्यत्व, होते हैं ।

अप्रमत्तविरतक सम्यक्त्व ३ में एक होता है । परं परिहारविशुद्धि व आहारक वालेके उपशमसम्यक्त्व कोईस नहीं होता है ।

अप्रमत्तसंयत संज्ञी , आहारक , क्रमशःदोनो उपा

गवाला , ७ ध्यानों में किसी का भी ध्यानता होते हैं ।

इस गुणस्थानमें आमत्र २२ होते हैं उनमें एक जीवके ५ या ६ या ७ होते हैं । भाव ३१ होते हैं एक जीवमें एकदा कमसे २२ अधिक से अधिक २५ होते हैं ।

यह गुणस्थान भी प्रत्याख्यानावरण के क्षयोपशम से होता है किन्तु विशेषता इतनी है कि संज्वलन कषायका मंद उदय रहता अप्रमत्त संयतके प्रत्याख्यानावरण का वर्तमान उदयाभावी क्षय व आगामी उदयमें आने योग्य प्रत्याख्यानावरण का मदवस्थारूप उपशम तथा संज्वलन-कषायका मंद उदय रहता है यही क्षयोपशम की स्थिति है अतः यह क्षायोपशमिक भाव है और निमित्त मोहका है

कषायोंके उपशम या क्षयकेलिये होने वाले अधः-करण परिणाम से पहिले सभी स्थितियोंमें अप्रमत्तविरत स्वस्थान अप्रमत्तविरत कहलाता है । कषायोंके उपशम या क्षयकेलिये होनेवाले अधःकरण में साप्रिशय अपरमत्त-विरत कहलाता है । यहां यदि उपशमका कार्य प्रारम्भ हो तो उपशम श्रेणि चढ़ेगा और यदि क्षयका कार्य प्रारंभ हो तो क्षपक श्रेणि चढ़ेगा

क्षायिक सम्यग्दृष्टि दोनों में किसी भी श्रेणिपर चढ़ सकता है परन्तु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणि ही चढ़ सकता है ।

अब प्रकरणवश अधःकरण का स्वरूप कहते हैं जहाँ ऊपरिमसमयवर्ती जीवोंके परिणाम नीचेके समयवर्ती जीवोंके परिणामके सदृश हों उसे अधःकरण कहते हैं। चिष्ठम अवस्थाके अनन्तर सम अवस्थामें जानेके लिये यह पहिला यत्न है।

अधःकरणका काल अन्तमुहूर्त है। जैसे प्रममय में अनेक जीवों ने अधःकरण परिणाम किया योग्य जघन्य और उत्कृष्टकी सीमा करके नाना प्रकार उनके परिणाम हुए फिर उन जीवों ने अङ्गले समय प्रक्रिया और परिणाम घड़े उस समय अन्य जीवों ने प्रप्रवेश किया इस तरह सब आगे बढ़ते जाते और इन जीव प्रवेश करते जाते हैं यहाँ प्रवेश करने वाले जीव जघन्य परिणामके अतिरिक्त अन्य परिणाम कुछ भी वालोंसे मिल जाते हैं अर्थात् उनके सदृश हैं। तथा तीयादि समय वालोंके परिणाम भी कुछ ऊपर वाले परिणामके समान हैं। अन्तिम समय का उत्कृष्ट परिणाम नीचेके समान नहीं। इस तरह अधःकरणके सर्वज्ञ व सर्वोत्कृष्ट परिणामके अतिरिक्त शेष परिणाम कुछ भी नीचे समयवालोंके समान रहते हैं। इसका दृष्टान्त प्रकार है जैसे अधःकरण का काल १६ समय यहाँ प्रसमयके परिणाम के प्रकार ४ करें।

१६	५४	५५	५६	५७	२२२	प्रथमनिवर्गणाका० द्वितीयनिवर्गणाका० तृतीयनिवर्गणाका० चतुर्थनिवर्गणाका०
१५	५३	५४	५५	५६	२१८	
१४	५२	५३	५४	५५	२१४	
१३	५१	५२	५३	५४	२१०	
१२	५०	५१	५२	५३	२०६	
११	४९	५०	५१	५२	२०२	
१०	४८	४९	५०	५१	१६८	
९	४७	४८	४९	५०	१६४	
८	४६	४७	४८	४९	१६०	
७	४५	४६	४७	४८	१६६	
६	४४	४५	४६	४७	१६२	
५	४३	४४	४५	४६	१७८	
४	४२	४३	४४	४५	१७४	
३	४१	४२	४३	४४	१७०	
२	४०	४१	४२	४३	१६६	
१	३९	४०	४१	४२	१६२	
समय	प्र०खंडदि०खं०त०खं०च०खंडसर्वधन					

इस अधःप्रवृत्त करण में प्रथम समय की जघन विशुद्धि सबसे कम है उससे द्वितीय समयकी जघन विशुद्धि अनंत गुणित है। उपसे तृतीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्त गुणित है इस प्रकार यह क्रम प्रथम निर्वर्गणाकांडकके अन्तिम समयवर्ती जघन्य विशुद्धि तक जाना चाहिये। जैसे दृष्टान्तमें चार समय प्रथम निर्वर्गण कांडकके हैं। तो तृतीय समयकी जघन्यविशुद्धिसे अनंत गुणित चौथे समयकी जघन्य विशुद्धि हूई। अब उस अनन्त गुणी विशुद्धि प्रथमसमयकी उत्कृष्ट विशुद्धि है। ऐसा लेटकर नीचेके समयमी उत्कृष्ट विशुद्धिपर आने जहाँसे लौटना हुआ वहाँतक एक निर्वर्गणाकाण्डक होता प्रथमनिर्वर्गण कांडकके अन्तिमसमय (४) की उत्कृष्टविशुद्धितीयनिर्वर्गणाकांडकके प्रथमसमय (५) वर्ती जीवकी जघन विशुद्धि है उससे अनन्त गुणी विशुद्धि द्वितीयनिर्वर्गणाकांड द्वितीय समय (६) वर्ती जीवकी जघन्य विशुद्धि उसरे तृतीय (७)की, यह क्रम द्वितीयनिर्वर्गणाकांडकके अन्तिमसमयकी जघन्य विशुद्धि तक चला जैसे दृष्टान्तमें उससे अनन्तगुण विशुद्धि द्वितीयनिर्वर्गणाकांडकके प्रथम समय (५) वर्ती जं की उत्कृष्ट विशुद्धि है। इस तरह आगे भी लगाते जाना इसकी रचनाका प्रकार संदर्भिं द्वारा इस प्रका-

जानता—संदृष्टिमें सर्वधन ३०७२ है, समय गच्छ १६, चय ४, संख्यात का प्रमाण ३ व निर्वर्गणकाण्डक ४ है ।

पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं—पद  $16 \times 16 = 256$   
 $\times 3$  संख्यात  $= 768$  ।  $3072 - 768 = 8$  चय अथवा  
 आदिधनोनं गणितं पंदोनपदकदिलेन संभाजिदं-एक गच्छ  
 कम, गच्छकी कृतिके आधेका आदिधनसे ऊन सर्वधनमें  
 भाग देवे जो बचे वह चय है । जैसे— $16 \times 16 = 256 - 16$   
 $= 240 - 2 = 120$  “ $3072 - 2562 = 480$ ” = ४ चय ।

आदिधन से ऊन सर्वधन अर्थात् उत्तरधन (चयधन)  
 व्येकपदार्थनचयगुणो गच्छ उत्तरधनम्—एक कम गच्छके  
 आधेमें चयका गुणाकरे फिर लब्धमें गच्छका गुणाकरे  
 $16 - 1 = 15 - 2 = 13$   $\times 8 = 30 \times 16 = 480$  उत्तरधन ।

आदिधन- $3072 - 480 = 2592$  आदिधन । अथवाप  
 दहतमुखमादिधनम्—मुख  $162 \times$  पद  $16 = 2562$  आदिधन ।

अन्तसमयसम्बन्धी परिणामधन—व्येकपदं चयाभ्य-  
 लं तदादिसहितं धनम्—एक कम गच्छमें चयका गुणाकर  
 उसमें प्रथमसमयका धन मिलावे । जैसे  $16 - 1 = 15 \times 8 = 60$   
 $+ 162 = 222$  अन्तिमसमयसम्बन्धी परिणामधन ।

अनुकृष्टचय— उद्दरचनाचयमें अनुकृष्टि गच्छका  
 भाग देवे—जैसे— $4 \div 4 = 1$  अनुकृष्टिचय (समयसंहीनमें  
 बढ़नेवाला चय) ।

प्रथमसमयके प्रथमखंडकाधन-चयभाजितं व्येकचय धर्मचयोधनमाद्यधनम्—एक कम चयके आधेमें चयका गुरु करे जो लब्ध हो उतना प्रथमसमयके धनमें घटाकर उस चयका भाग देवे—जैसे  $4 - 1 = 3 \div 2 = 1$ ।  $1 \times 4 = 6$ ।  $16 - 2 = 14$ ।  $6 \div 4 = 3$ । प्रथमसमयके प्रथम खंडका धन ।

सर्वधन—मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि मुख  $162 + भूमि 222 = 384 \div 2 = 162$  गच्छ (पद  $16 = 3072$  सर्वधन ।

आद्यसमयधन-व्येकपदम्भचयोनमंत्रिधनम्—एक क पदसे गुणित चयसे कम अन्तिमधन आद्यसमयधन है ।  $1 - 1 = 1$ ।  $4 \times 4 = 60$ ।  $222 - 60 = 162$  प्रथमसमयका धन

उक्तसंदृष्टि द्वारा अधःकरणके यथार्थ परिणामोंक परिज्ञान कर लेना चाहिये ।

अधःकरण निश्चलिखित अन्तरारोपर होता है—  
प्रथमोपशमसम्यक्त्वसे पहिले दर्शनमोहके अन्तरकरणं लिये, २- वेदकसम्यक्त्वकेर्त्तिये ३ संयमासंयमकेर्त्तिये ४ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वसे पहिले अनंतानुबंधीकी विसंयोजन लिये, ५ द्वितीयोपशमसे पहिले दर्शनमोहके अन्तरक केर्त्तिये, ६ सकलचारित्रकेर्त्तिये, ७ क्षायिक सम्यक्त्व से पहिले अन्तानुबंधीकी विसंयोजनाके लिये, ८ क्षायिक सम्यक्त्वसे पहिले दर्शनमोहकी क्षपणाके लिये, ९ चारि-

मोहके उपशमकेलिये १० चारित्रमोहके क्षयकेलिये ।

इस अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें ही अधिकसे अधिक बार ३ अवःकरण होंगे तो निम्नप्रकार होंगे - १ द्वितीयोपशम कोअनं नुबन्धीकीविसंयोजना केलिये, २ द्वितीयोपशमको दशनिमोहके अन्तरकरणकेलिये, ३ चारित्रमोहके उपशमके लिये पश्चात् श्रेणि चढ़कर गिरे तब वेदक सम्यक्त्व हो पश्चात् ४ क्षायिकसम्यक्त्वको अनंत नुबन्धीकी विरयोजनाकेलिये, ५ क्षायिक सम्यक्त्वको दर्शनमोहकी क्षपणकेलिये, ६ चारित्र मोहकेक्षयकेलिये।

ऐसा भी हो सकता है कि इस गुणस्थानमें एक बार भी करण न हो और कुछ काल रहकर नीचे गिर जावे। इस गुणस्थान पानेके लिये जो करण हुआ वह इससे पहिले प्रथम या चतुर्थ अथवा पञ्चम गुणस्थानमें हुआ था।

इस गुणस्थानमें किसी भी आयु का बंध नहीं होता किन्तु यदि प्रमत्तविरतमें देवायुका बंध प्रारम्भ किया हो और बंधकाल में अप्रमत्तविरत हो जावे तो देवायु बंध को पूर्ण कर देता है इस तरह इस गुणस्थानमें देवायुका बंध है।

यह गुणस्थान ध्यान अवस्थामें होता व आहार, विहार आदि करने हुए भी कभी अल्प अंतर्मुहूर्त को संयत के हो सकता है किन्तु निद्रामें यह गुणस्थान नहीं होता।

इस प्रकार अप्रमत्तविरत गुणस्थानका वर्णन कर अब अपूर्वकरणगुणस्थानका वर्णन करते हैं-

### अपूर्वकरण गुणस्थान

चारित्रमोहके उपशम या क्षयकेलिये अप्रमत्तविर साधु जब अधःकरणकरके अपूर्वकरणमें पहुंचता है त अपूर्वकरणके प्रथमसमयसे ही यह अपूर्वकरण गुणस्थान होता है ।

अपूर्वकरणका शब्दार्थ— अ=नहीं, पूर्व=पहिले करण=परिणाम । अर्थात् जो परिणाम पहिले समयमें उसके या अन्यके नहीं थे उन परिणामोंका होना । इसमें यह तात्पर्य निकला कि अपूर्वकरणमें विवक्षित समयवर्ती मुनिके परिणाम इसमें पहिले या अगले समयवर्त मुनियोंके परिणामसे मिलते नहीं हैं ।

इस परिणाममें प्रतिसमय ६ कार्य विशेष होते रहते हैं—प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धता, २ पूर्ववंधेहुए कर्मकं असंख्यातगुणो स्थितिका घात,३ असंख्यातगुणी कर्म स्थितिके हो होकर ही नवीन कर्मोंका बंधना, ४ पूर्व वंधे हुए कर्मोंका असंख्यात गुणा अनुभाग का घात,५ असंख्यात गुणे कर्मवर्गणावोंकी निर्जरा व ६- पापः कृतियोंक पुण्यप्रकृतियोंमें बदलना । अन्य स्थानोंमें भी अपूर्वकरण परिणाम होता है वहाँ भी तत्त्वायोग्य ये छहों कार्य लग

लेना चाहिये ।

अपूर्वकरण गुणस्थान प्रत्याख्यानावरणके वर्तमान के उदयाभावी क्षय व आगामीके सदवस्थारूप उपशम व संज्ञलनके मंड उदयसे व अपूर्व करण परिणाम द्वारा उत्पन्न होता है ।

चारित्रमोहके क्षयोपशमकीस्थितिमें यह गुणस्थान उत्पन्न होता है इसलिये इसे क्षयोपशमिक कहा गया है। इस गुणस्थान वाला आत्मा नियम से क्षायिक चारित्र अन्तमुहूर्त में प्रकट करेगा तथा मोह ( कषाय) क्षयकेलिये करण परिणाम कर रहा है इस लिसे क्षपक श्रेणिवाले अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसयतके उपचारसे क्षायिक भाव भी कहा गया है । तथा उपशम श्रेणिवाला अपूर्वकरण प्रविष्ट शुद्धि संयत मरणके अभावमें अन्तमुहूर्तमें नियमसे औपशमिक चारित्र प्रकट करेगा तथा क्षयायके उपशमके लिये करणपरिणाम कर रहा है इसलिये इसके उपचारसे औपशमिक भाव कहा गया है । सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टिके क्षायिक भाव है और द्वितोपशम सम्य-दृष्टिके औपशमिक भाव हैं । इन सभी प्रसंगोंमें निमित्त मोहका है, या अर्थात् मोहके क्षयोपशमकी अपेक्षा हैं, कहीं उपशमकी अपेक्षा है और कहीं क्षयकी अपेक्षा है ।

इस गुणस्थानमें सामान्यरूपसे ५८ प्रकृतियोंका

बन्ध होता है क्योंकि प्रमत्तान्तबन्धव्युच्छ्लन् ६१ अप्रम  
विरत गुणस्थानमें बन्धव्युच्छ्लन् देवायु इन ६२ प्रकृतियों  
का बन्ध नहीं होता है ।

इस अपूर्वकरणगुणस्थानके कालके ७ भाग ।  
प्रथमभागमें ५८ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । द्वितीय,  
तृतीय, चतुर्थ व, पञ्चम व पष्ट भागों में ५६ प्रकृतियों  
बन्ध होता है इनमें निद्रा प्रचला इन दो प्रकृतियों का  
बन्ध नहीं होता है । सातवें भागमें २६ प्रकृतियोंका बन्ध  
होता है । इसमें देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियकशर  
वैक्रियकाङ्गोपाङ्ग, आहारकशरीर आहारकाङ्गोपाङ्ग, तैज  
शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्व  
वर्ण, गंध रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपधात, परधात, उच्च  
वास, प्रशस्तविहायोगति,, त्रस, वादर, पर्याप्ति, प्रत्ये  
स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, तीर्थकर और निम  
नामकर्मकी इन ३० प्रकृतियोंका बंध नहीं होता है ।

अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयतों के उदय ७२ प्रकृति  
का रहता है इसमें प्रमत्तान्त उदयव्युच्छ्लन् ४५  
अप्रमत्तमविरत में उदयव्युच्छ्लन् ४ व तीर्थकरप्रकृति  
५० प्रकृतियोंका उदय नहीं रहता है ।

इस गुणस्थानमें मत्त्व १४२, १३६, १३८, प्रवृ  
का होता है । इसमें जीव ३ प्रकारके हैं १ द्वितीयोपः

सम्यग्विष्ट उपशमक, २ क्षायिकसम्यग्विष्ट उपशमक, ३ क्षायिकसम्यग्विष्ट क्षपक । द्वितीयोपशमसम्यग्विष्ट उपशमक के अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ का विसंयोजन होनेसे सच्च नहीं है और तिर्यगायु व नरकायु का पहिले से ही सच्च नहीं है सो ये ६ प्रकृतियां घट जानेसे १४२ का सच्च युक्त है । क्षायिकसम्यग्विष्ट उपशमकके अनन्तानुबन्धी ४ व दर्शन मोह ३ इन सात का सम्यक्त्वोत्यादमें ही क्षय हो जानेसे व तिर्यगायु नरकायुका पहिले सच्च न होने से ६ प्रकृतिका सच्च नहीं है अतः उसके १३८ प्रकृतियोंका सच्च है । क्षायिकसम्यग्विष्टक्षपकके उक्त ६ व देवायु इन दस का सच्च नहीं है । अतः क्षायिक सम्यग्विष्ट अपूर्वकरणप्रविष्ट्युद्धि संयत क्षपक के १३८ प्रकृतियोंका ही सच्च है ।

अब एहसाफ़ मूल अपूर्वकरणपरिणामों की विशुद्धि ज्ञात करनेकेलिये एक संदर्भित लिखते हैं- इसकी रचनाकी पद्धति इस प्रकार है-

८	५५३ - ५६८
७	५३७ - ५५२
६	५२१ - ५३६
५	५०५ - ५२०
४	४८६ - ५०४
३	४७३ - ४८८
२	४५७ - ४७२
१	४५६ तक
समययोग- ४०६६	

सर्वधन ४०६६, आदि  
 धन २६४८, उत्तरधन ४४८  
 कालगच्छ द, संख्यात  
 प्रमाण ४, चय १६ ।  
 चय-पदकदि-संखेण भाजिदं  
 पचयंगच्छकी कृति और सं-  
 ख्यातका सर्वधनमें भाग देने  
 सेचय निकलता है-जैसे  $८ \times ८ = ६४ \times ४ = २५६$  ।  $४०६६ \div २५६ = १६$  ।

उत्तरधन-व्येकपदार्थभन्धयगुणो गच्छ उत्तरधनम् ।  
 कम गच्छके आयेमें चयका गुणा करे फिर उम लब्धमें ।  
 गुणाकरे-  $८ - १ = ७$  -  $२ = ३$  ॥  $१ \times ६ - ५६ \times ८ = ४४८$  उत्तर

अंतिम समयसम्बन्धी परिणामधन-व्येकपदं च  
 भ्यस्तं तदादिसहितं धनम्- एक कम गच्छमें चयका गु  
 कर उसमें प्रथमसमयका धन मिलावे । जैसे  $८ - १ =$   
 $1 \times ६ = ११२ + ४५६ = ५६८$  अंतिमसमय परिणामध  
 आद्यसमयधन-व्येकपदभन्धयोनमंतिभधनम्-एक कम गच्छरं

का गुणाकार उसे अन्तिमधनमें से कम कर देवे—८-१=७  
 $7 \times 16 = 122$  ।  $568 - 112 = 456$  ।

आदिधन-पदहतमुखामादिधनम् मुखमें गच्छका गुणाकरे  
 $456 \times 8 = 3648$  यह आदिधन है ।

सर्वधन-मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं होंदि-  
 $456 + 56 = 1024 \div 2 = 512 \times 8 = 4096$  ।

अपूर्वकरण परिणाममें विशुद्धितारतम्य--इसके प्रथम समयमें जो जो जबन्य विशुद्धि है उससे अनंतगुणी विशुद्धि प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि है । उससे अनंत गुणी विशुद्धि द्वितीय समय की उत्कृष्ट विशुद्धि है । इस प्रकार अन्तिम समयके उत्कृष्ट परिणाम तक चलाना चाहिये ।

इस गुणस्थान में जीव सैंनी पञ्चेद्रिय पर्यास होता इसके पर्यासियां ६, प्राण १० संज्ञा ४, गति मनुष्य, जाति पञ्चेन्द्रिय, त्रिकाय, ६ योग, वेद ३, कषाय १२ में ६-५-४ में उपयोगसे एकदा १, संयम २, दर्शन ३-२ में उपयोग एकदा १, लेख्या शुक्ल लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व २ द्वितीयोपशम व ज्ञायिक, होते हैं ।

अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती जीव - आहारक, क्रमशः दोनों उपयोग वाले, पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान के ध्यान होते हैं ।

इसमें आसव १३ किन्तु एक जीवके ७-६-५ होते हैं

भाव २८, एक जीव में २२--२३--२४ २५ होते हैं ।

अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयत के देहकी अवगाहन ३॥ हाथसे ५२५ धनुष तक की होती है ।

इनका आवास ढाई द्वीप के भीतर ही है । उन लोकका असंख्यातां भाव हैं × व स्पर्शन भी लोकके असंख्यातवे भागमें होता है ।

अपूर्वफरणप्रविष्टशुद्धिसंयतों में उपशामक जीवों जघन्यकाल तो एक समय है व उत्कृष्टकाल अन्तमुर्त है । परन्तु क्षपक जीवोंका जघन्यकाल मी अन्तमुर्त्त हूर्त और उत्कृष्टकाल भी अन्तमुर्त्त हूर्त है । दोनों में नानाजी में उक्त दोनों प्रकारका वैसा ही काल है ।

क्षपक एकजीव में यह नहीं होता कि अष्टमगु स्थान छोड़कर अन्य गुणस्थानोंमें जाकर पश्चात् अष्ट गुणस्थानमें आवे, क्योंकि क्षपकजीव आगे गुणस्थान बढ़कर गुणस्थानातीत ही हो जावेगा ।

सर्वजीवकी अभेद्या यह अन्तर आसकता है कोई समय ऐसा रहे कि कोई भी जीव अष्टम गुणस्था नहीं है तो ऐसा अन्तरकाल कमसे कम एकसमय अधिकसे अधिक ६ माहका हो सकता है ।

अष्टमगुणस्थानबर्ता उपशामक एक जीव अष्टमगु स्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानमें रहे पश्चात् अष्ट

गुणस्थान पावे इसबीचका अन्तर कमसे कम अन्तमुर्हूर्त और अधिकसे अधिक २८ अन्तमुर्हूर्त कम अद्भुद्धल परिवर्तन काल होता है। इसमें गिरतेके अपूर्वकरणसे अन्तर लिया है सो इसमें लगातार १२ अन्तमुर्हूर्त लगे फिर संसारभ्रमण करके अपूर्वकरण होगा उसके बाद निर्वाण पाने में १६ अन्तमुर्हूर्त लगेंगे इस प्रकार २८ अन्तमुर्हूर्त कम अद्भुद्धल परिवर्तनकाल अन्तर होता है।

नानाजीव उपशामकोंका अन्तर कमसे कम एक समय व अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्व ( ३ से ६ वर्षतक ) होता है।

इस अपूर्वकरण गुणस्थानमें उपशमक जीव ७ वें या ८ वें गुणस्थानसे आता है और यह अपूर्वकरणप्रविष्ट विशुद्धिसंयत जाता भी ७ वें में या ८ वें में, किन्तु यदि इस गुणस्थान के अनंतर ही मरण हो जाय तो चौथे गुणस्थानमें जाता है और नियमसे देवगतिमें ही उत्पन्न होता है। चढ़ते हुए में आठवेंके पहिले भागमें मरण नहीं होता।

क्षपक ७वें गुणस्थानसे ही अपूर्वकरणमें आता है, इसका मरण नहीं होता और न नीचे गिरना होता है किन्तु विशुद्धिसे बद्धमान होकर ऊपरके गुणस्थानोंमें पहुंचता हुआ चारेत्रमोहत्त छयकर व पुनः धातिया कर्मोंका छय करके

पश्चात् अधातिया कर्मोंका क्षय करके सिद्ध ही होवेगा।  
इस प्रकार अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिमंयत उपशमक व क्षा  
का वर्णन करके अब अनिवृत्तिकरण गुणस्थानका स्व  
कहते हैं —

### अनिवृत्तिकरण गुणस्थान

जहाँ पूर्व व उत्तर समयवर्ती साधुवोंके परिणाम विलः  
हों तथा समान समयवर्ती साधुवोंके परिणाम एक से  
हों , समान हों उन परिणामोंको अनिवृत्तिकरण कहते

अ=नहाँ , निवृत्ति = भेद अर्थात् जहाँ समान स  
के परिणामोंमें भेद न हो उन करण अर्थात् परिणाम  
अनिवृत्तिकरण परिणाम कहते हैं ।

यह गुणस्थान प्रत्याख्यानावरण के वर्तमान स्पः  
के उदयाभावी क्षय , आगामी उदययोग्य उन्हों स्पद्ध  
सदवस्थारूप उपशम व सज्जलन कषायके अनिमंद  
से अनिवृत्ति करण परिणामों द्वारा प्रकट होता है ।  
क्षयोपशम की दशा वर्तमान है अतः इस गुणस्थानमें क्ष  
पशमिक भाव है परन्तु कषायके उपशम या क्षयके  
उपशमश्रेणिवाले अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्तीका  
परिणाम हुआ है व २० कषायोंका इस गुणम  
उपशम भी कर देता है तथा मरण न हो तो अवश्यही

पश्चिमिक चारित्र प्रकट करेगा अतः औपशमिक भाव भी माना गया है। तथा क्षपक श्रेणि वाले अद्विद्वाहरणवाद-साम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयतका यह परिणाम क्षाय के क्षय के लिये प्रकट हुआ है और यह नियम से शीघ्र क्षायिक चारित्र प्रकट करनेवाला है व २० क्षायोंका यहाँ क्षय भी कर देता है अतः इसके क्षायिक भाव भी कहा गया है निमित्त सबमें मोह का है अर्थात् मोहके क्षयोपशम से या उपशम व क्षयके कार्य से यह गुणस्थान प्रकट हुआ है।

इस अनिवृत्तिकरणमें समानसमयवर्ती साधुके परिणाम एक से ही होते हैं। यहाँ ऐसा भी नहीं रहा जैसेकि अपूर्वकरण परिणाममें होना था कि समानसमयवर्ती साधुओं के परिणाम मिल भो जावें और न भी मिलें। यहाँ ता नबके बैसा ही परिणाम होता है। इसके उदाहरण का निरलिखित नक्शासे अनुमान कर सकते हैं – इम गुणस्थान ना समय अपूर्वकरण से आधा है।

समय	परिणाम	अतः दृष्टान्तमें दसमयके
४	१३७६	आधे ४ समय लिये हैं। इसमें
३	१३१२	दृष्टान्त पहिले समयवर्ती जितने
२	१२४८	भी साधु होंगे उनसबके ११८४
१	११८४	डिगरी का परिणाम होगा व

दूसरे समयवर्ती साधुओंका परिणाम १२८४ डिग्रीका होगा । इसीतरह अनिवृत्तिकरणके सभी समयोंमें सदृश लगाना चाहिये ।

इस गुणस्थानमें संज्वलनकषायका अतिमंद उदय होते हुए भी सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें दोनेवाले संज्वलन सूक्ष्मलोभ के मुकाविले अधिक है अतः इस गुणस्थान को बादरसाम्पराय भी कहते हैं । वैसे बादरसाम्पराय पहले गुणस्थानसे लेकर नवमें गुणस्थान तक कहे गये हैं । जैसे असंयत पहिलेसे चौथे तक , प्रमत्त पहिले से छठे तक समझे जाते हैं ।

अनिवृत्तिकरणबादरसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयत जीव के बंध २२ प्रकृतियोंका होता है क्योंकि प्रमत्तान्तव्युच्छिन्न ६१ व अप्रमत्तव्युच्छिन्न १ , अपूर्वकरणव्युच्छिन्न ३३ इन ६८ प्रकृतियोंका यहाँ बन्ध नहीं है ।

इस बंध प्रकरण में अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके ५ भाग करना जिसमें पहिले भागमें बंध २२ का दूसरे भागमें बंध २१ का, यहाँ पुरुषवेदका बन्ध नहीं होता । तीसरे भागमें बंध २०का, यहाँ संज्वलन क्रोधका बंध नहीं होता । चौथे भागमें १६ का बंध, इस भागमें संज्वलन मानका बंध नहीं होता । पांचवें भागमें १४का बंध होता है, इस भाग में संज्वलन माया का बंध नहीं होता ।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें उदय ६६ प्रकृतियोंका है क्योंकि यहाँ प्रभत्तान्त उदयव्युच्छिक्ष ४५ व अप्रभत्तव्युच्छिक्ष ४ व अपूर्वकरणव्युच्छिक्ष हास्य, रति अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये ६ तथा तीर्थकर प्रकृति इन ५६ प्रकृतियों का उदय नहीं है ।

इस उदयप्रकरणमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके ५ भाग करिये प्रथमभागमें उदय ६६ प्रकृतियोंका है क्योंकि अपूर्वकरणव्युच्छिक्ष हास्यादि ६ का उदय नहीं रहता । द्वितीय भागमें एक जीवकी अपेक्षा ६४ का उदय है इसमें जो जिस वेदके उदयसे चढ़ा है उसके उस वेदका उदय है शेष २ वेदका उदय नहीं । तृतीय भागमें उदय ६२ का है इसमें अवशिष्ट वेद का उदय नहीं है । चतुर्थ भागमें ६२ का है इसमेंसं ज्वलन क्रोधका उदय नहीं है । पञ्चम भागमें उदय ६१ का है इसमें संज्वलन मानका उदय नहीं है, इसमें माया और वादर लोभकी उदय व्युच्छिति हो जाती है जिससे सिद्ध है कि यहीं तक संज्वलन वादर लोभ है आगे नहीं रहेगा ।

इस गुणस्थानमें सच्च १४२ प्रकृतियों तक का है इसे विशेष रूपसे कहते हैं—अनिवृत्तिकरणवादग्रसाम्पराय-प्रविष्टशुद्धिसंयत जाव ३ प्रकारके हैं— द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमक, २ क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमक ३

क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपक । इनमें द्वितीयोपशम रत्नांचलम्  
उपशमकके १४२का सत्त्व है क्योंकि इसके विसंयोजित अन-  
न्तानुवन्धी ४ व नरकायु, तिर्यगायु इन ६ का सत्त्व नहीं  
है । क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमकके १३६ का सत्त्व है  
क्योंकि इसके सम्यक्त्वघाती मात्र प्रकृति व तिर्यगायु नर-  
कायुका सत्त्व नहीं है ।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि अनिवृत्तिकरणबादरसाम्पराय  
प्रविष्टशुद्धिसंयत क्षपक जीवके कालके ६ भाग करिये ।  
इसमें प्रथमभागमें सत्त्व १३८ का है इसमें सम्यक्त्वघाती  
७ प्रकृति व नरकायु तिर्यगायु देयायु इन १० का सत्त्व  
नहीं है । द्वितीयभागमें ११२ प्रकृतियोंका सत्त्व है, इसमें  
पूर्वोक्त १० व प्रथमभागव्युच्छित्रम् रत्नांचल, नरकगत्या-  
नुपूर्वी, तिर्यगति, तिर्यगत्यानुपूर्वी, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय,  
चतुर्निंद्रिय, उद्योत, आत्माप, एकेन्द्रिय, स्थावर,  
साधारण सूक्ष्म रत्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला ये  
१६ प्रकृति इस प्रकार २६ का सत्त्व नहीं है ।  
तृतीयभागमें ११४ का सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त २६ तथा  
द्वितीयभागव्युच्छित्र अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया  
लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान मायालोभ, ये आठ इस  
प्रकार ३४ का सत्त्व नहीं है । चतुर्थभागमें ११३ का  
सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त ३४ व तृतीयभागव्युच्छित्र नषुंसक्त

वेद इस प्रकार ३५ का सच्च नहीं है। पञ्चमभाग में ११२ का सच्च है, इसमें पूर्वोक्त ३५ व चतुर्थभागव्युच्छित्र स्त्रीवेद इन ३६ का सच्च नहीं है। पष्ठ भाग में १०६ प्रकृतिका सच्च है, इसमें पूर्वोक्त ३६ व पञ्चमभागव्युच्छित्र हास्य, रति, अरति, शोक भय, जुगुप्सा ये ६ इस प्रकार ४२ का सच्च नहीं है। सप्तमभाग में १०५ का सच्च है, इसमें पूर्वोक्त ४२ व पुरुषवेद इन ४३ का सच्च नहीं है। अष्टमभाग में १०४ का सच्च है, इसमें पूर्वोक्त ४३ व संज्वलन क्रोधवेद ४४ प्रकृतियोंका सच्च नहीं है। नवम भाग में १०३ प्रकृतियोंका सच्च है, इसमें पूर्वोक्त ४४ व संज्वलन मान इन ४५ प्रकृतियोंका सच्च नहीं है। इसी नवम भाग में संज्वलन माया की भी सच्चव्युच्छित्रि हो जाती है जो आगे न रहेगी।

इस प्रकार नवमें गुणस्थानमें प्रकृतियोंका बंध उदय सच्च शृथक् पृथक् रहा इनको सम्मिलितरूपसे जानतेके लिये विश्वलिखित नक्शे में देखें—

भाग	सत्त्व	बंध	उदय
१	१४६, १४२, १३६, १३८	२२	६६
२	१४६, १४२, १३६, १२२	२२	६६
३	१४६, १४२, १३६, ११४	२२	६६
४	१४६, १४२, १३६, ११३	२२-२१	६५-६४
५	१४६, १४२, १३६, ११२	२२-२१	६४-६३
६	१४६, १४२, १३६, १०६	२१	५३
७	१४६, १४२, १३६, १०५	२१-२०	६३
८	१४६, १४२, १३६, १०४	-१६	६२
९/१	१४६, १४२, १३६, १०३	१६-१८	६१
९/२	१४६, १४२, १३६, १०२	१८	६०

सब भाग इसमें ६ दिखाये हैं, सब भागोंमें १४६, १४२, १३६के सत्त्वाले तक साधु पाये-जा सकते हैं। किन्तु बंध व उदय इकहरा दिखाया जावे तो इसके भाग और भी हो सकते-हैं तथा स्थितिकाण्डकघात आदि अपेक्षायें लगाई जावे तो अर्थख्यात भाग हो जाते हैं।

अब आगे वर्ण व उदयका इकहरापन दिखानेके लिये द्वितीय नवशा लिखते हैं, यह नवशा क्षपकश्रेणी वालेकी मुख्यतासे लिखते हैं सो उसले शेष दो प्रकार के जीवोंका बंध उदय समान जानना और सत्त्वमें सब स्थानों में १४६, १४२, १३६, भी समझलेना—

भाग	सन्त्र	बंध	उदय
१	१३८	२२	६६
२	१२२	२२	६६
३	११४	२२	६६
४	११३	२२	६५
५	११३	२२	६४
६	११३	२१	६४
७	११२	२१	६४
८	११२	२१	६३
९	१०६	२१	६३
१०	१०५	२१	६२
११	१०५	२०	६२
१२	१०४	२०	६२
१३	१०४	१६	६२
१४	१०३	१६	६२
१५/१	१०३	१८	६१
१५/१	१०२	१८	६०

इस नक्शे की सम्भालमें थोड़ा अन्तर रह गया हो तो पंडित जन इसे संभाल लेवें ।

इस अनिवृत्ति-करणके समयमें स्थिति कांडक पल्यके संख्यात्वे भाग है जिन का किधात होता है । नवीन स्थिति बंध पहिले से भी पल्यके संख्यात्वें भाग से हीन है । अनुभागकाएडक शेषके अ-अनन्त दहुभाग प्रमाण हैं अनन्तगुणश्रेणीरूपसे शेष शेषमें गुणश्रेणीका निक्षेपहै । इसही प्रथम समयमें अप्रशस्तप्रकृतियोंका उपशासनाकरण, निधचिक्करण,

निकाचितवरण ये तीन समाप्त हो जाते हैं। इसके पश्चात् उचरे चर प्रकृतिस्थितियां अनुभाग, बंधस्थिति हीन होती जाती हैं निर्जरा असंख्यातगुणी होती है।

जब अनेकस्थितिबंधसहल बीत जाते हैं तब वीर्यान्तरायका अनुभागबंध देशवाती होजाता है, मोहनीय का स्थितिबंध शेष ६ कर्मोंसे भी थौड़ा होता है उससे असंख्यातगुणा ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तरायका

भाग	बंध	उ०	सत्त्व
१	५	२	२१
२	५	२	१३
३	४	२	१३
४	४	२	१२
५	४	२	११
६	४	१	५
७	४	१	५
८	४	१	६
९	३	१	४
१०	३	१	३
११	२	१	३
१२	२	१	२
१३	१	१	२
१४	१	१	१

स्थितिबंध है, वेदनीय का स्थितिबंध कुछ अधिक है। न्यपक श्रेणीमें मोहनीय कर्मके बंध उदय सत्त्वके थानों के क्रमसे निम्न प्रकारसे भाग होते हैं। इसका यह तात्पर्य है कि अनिवृत्तिकरण न्यपक साधुके षष्ठिले ५ का बंध, २का उदय, २१ का सत्त्व रहता है। बादमें ५ का बंध, २ का उदय, १३ का सत्त्व रहता है।

बादमें ४ का बंध, ८ का उदय, १३ का सन्चर रहता है।  
 बादमें ४ का बंध २ का उदय, १२ का सन्चर रहता है।  
 बादमें ४ का बंध, २ का उदय, ११ का सन्चर रहता है।  
 बादमें ४ का बंध, १ का उदय १३ का सन्चर रहता है।  
 बादमें ४ का बंध, ९ का उदय ५ का सन्चर रहता है।  
 बादमें ४ का बंध, ९ का उदय, ४ का सन्चर रहता है।  
 इस प्रकार शेष आगंके हिस्सों भी लगा लेना चाहिये।

इस स्थितिके पश्चात् संख्यात् स्थितिबंध सहस्र वीत जानेपर अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, मंज्वलन ४ इन बारह कषायोंका व ६ कषायोंका अन्तर-करण करता है, किन्तु यहाँसे नपक इनका नपणा संबंधी कार्य—संक्रमण आदि करने लगता है। एक उपशामनामे हीन हीन होने वाले संख्यात् स्थितिबंध सहस्र वीत जाते हैं।

उपशमश्रेणीमें प्रकृतियोंके उपशाम्त होनेका क्रम इस प्रकार है—१—नपुसंक वेद। २—स्त्रीवेद। दास्यादि छह व पुरुषवेद का बहुभ .। ४ पुरुषद के वरु समय प्रबद्धहै ५ अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरण के क्रोधका संक्रमण करके संज्ञलन क्रोध। ६अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरण के मानका संक्रमण करके संज्ञलन मान ७अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण की मायोका संक्रमण करके

## संज्वलनवादर लोभ ।

क्षपक श्रेणिमें प्रकृतियोंके क्षय होने का क्रम इस इस प्रकार है—१ स्त्यानगृह्यादि तीन व नरकगत्यादि तेरह ये १६ प्रथमभागीयसत्त्वव्युच्छब्द प्रकृतियाँ । २-अप्रत्याख्यानावरण चार व प्रत्याख्यानावरण चार ये ८ । ३-नपुंसकवेद । ४ स्त्रीवेद । ५ हास्यादि ६ । ६-पुरुषवेद । ७ संज्वलनक्रोध । ८ संज्वलन मान । ९ संज्वलन माया व वादरलोभ स्पद्धक ।

इस क्षपक अन्तरात्माके उक्त ३६व क्षायिक सम्यक्त्व समय नष्ट होने वाली ७ तथा तीन आयुका सत्त्व जन्म से ही नहीं सो आयु ३ इस प्रकार ४६ प्रकृतियों का सत्त्व नष्ट हो चुकता है ।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में जीव संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होते हैं । इनके पर्याप्तियाँ ६, प्राण १०, संज्ञा २व , मनुष्यगति, जाति पञ्चेन्द्रिय, त्रसकाय, योग ६, वेद ३ में से १ व अपगतवेद, कषाय ७ में से २ व १, ज्ञान ४, संयम २, दर्शन ३, शुक्ललेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व २ (ज्ञा०द्वि०) में एक होते हैं ।

अनिवृत्तिकरण वा दरसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयत जीव संज्ञी, आहरक, क्रमशः २ उपयोगवाले, पृथक्लदवितर्क

तेचार शुक्लध्यान के ध्याता होते हैं।

इस गुणस्थानमें आस्थ १६ में एकदा ३ व २ ,  
व व २८ में जीवके २५ , २४ , २३ , २२ होते हैं।

इनके देहकी अवगाहना कम से कम ३॥ हाथ व  
पथिकसे अधिक ५२५ धनुष तक की होती है।

इन का आवास ढाई द्वीपके भीतर ही है क्षेत्र व स्पर्श  
लोक का असंख्यात्मां भाग है

इस गुणस्थानकाकाल अन्तर्मुहूर्त है सातिशय अप्र-  
रक्षसे आधा काल अपूर्वकरणका है और अपूर्वकरणसे  
प्राधा काल अनिवृत्तिकरणका है इसमें उषशामक नाना  
एक जीव का जघन्य काल एक समय है क्योंकि अनि-  
वृत्तिकरणमें चढ़ने या ज्ञानेमें एक समय को आते ही  
भी मरण संभव है और तब चतुर्थगुणस्थानहो जाता है देव-  
प्रातिमें जन्म लेते हैं। उषशामक जीवोंका उत्कृष्टकाल अन्त  
मुहूर्त है। क्षपक अन्तरात्माओं नाना  
जीवोंमें भी जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है व उत्कृष्टकाल भी  
अन्तर्मुहूर्त है तथा एक जीवमें भी जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त  
है उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त है।

क्षपकश्रेणिवाले एक जीवका अन्तर नहीं होता क्यों  
कि क्षपकश्रेणिसे चढ़कर वह अन्त में गुणस्थानानातीत हो  
जाता है दूसरीबार उसी गुणस्थान में नहीं आता। यही

पद्धति यत्र क्षयक गुणस्थानोंकी है ।

नानाजीवकी अरेक्षा अन्तर अर्थात् ऐसा काल जबकि इस गुणरथान में एक भी जीव न हो कम से कम एक समय होता है व अधिक से अधिक छह माह होता है ।

उपशामक नाना जीवोंका जघन्य अंतर एक समय का होता है व उत्कृष्ट अंतर वर्षपृथक्त्वका होता है । एक जीव उपशामकका जघन्य अंतर अन्तमुहूर्त है व उत्कृष्ट अंतर २६ अन्तमुहूर्त कम अर्द्धपुदल परिवर्तन काल तक का हो सकता है । इसमें ११ अन्तमुहूर्त तो अन्तरसे पहिले का है और १५ अन्तमुहूर्त अन्तर यमास करनेके पश्चात् के हैं ।

संज्ञलन ४ कषायोंका कृष्टिकरण करके त्य होता है सो लोभकी अन्तिम वादरसाम्परायिक कृष्टियाँ सूक्ष्म साम्परायिक कृष्टियोंमें पूर्णसंकरण कर लेती है वह नवमें गुणस्थान का अन्तिम समय है जिसके पश्चात् दशवाँ गुणस्थान प्रकट होता है ।

नवमें गुणस्थानके इस अन्तिम समयमें संज्ञलन लोभका स्थितिबंध अन्तमुहूर्त व तीन घातियाकर्मोंका कुछ कम एक दिन प्रमाण तथा वेदनीयकर्म , नामकर्म , गोत्रकर्मका स्थितिबंध कुछ कम एक वर्षप्रमाण रहजाता है । इस समय जो कर्म बंधे हुए थे उनकी स्थिति इसप्रकार

रह जाती है मोहनीयकी अन्तमुहूर्त , तीन घातियाकर्मोंका संख्यात् हजार वर्ष, तथा नामकर्म गोत्रकर्म व देदनीयकर्म इनका असंख्यात् हजार वर्ष ।

इस परिस्थितिके पश्चात् वाहराम्पराय गुणस्थान का व्यय और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान का उत्पाद एकही समयमें होता है । सभी गुणस्थानों की व सभी पर्यायों की यही पद्धति है कि पूर्वपर्यायका व्यय और उत्तरपर्यायका उत्पाद एक साथ होता है , अर्थात् पूर्वपर्यायका व्यय उत्तर पर्यायके उत्पादस्वरूप है और उत्तरपर्यायका उत्पाद पूर्व पर्यायके व्ययस्वरूप है । इस प्रकार अनिवृत्तिकरणवादर साम्पराय प्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक व क्षपक का वर्णन करके अब सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान का वर्णन करते हैं –

### सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान

जब केवल संज्वलन सूक्ष्म लोभ रहजाता है तब उसे तूक्ष्मसाम्पराय कहते हैं , उस सूक्ष्मलोभके नाशके लिये जो चारित्र होता है उसे सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहते हैं । सी ग्यानका नाम सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान है । इस स्थानमें रहनेवाले अन्तरात्माका नाम सूक्ष्मसाम्पराय प्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक या क्षपक है ।

यहगुणस्थान प्रत्याख्यानावरणके क्षयोपशमके संज्वलनसूक्ष्मधृक्षुद्धिगत लाभके दद्य के निमित्तसे तथा

सूक्ष्मसाम्परायचारित्रपरिणामद्वारा होता है। इसमें निमित्त गुणहोते हैं अर्थात् चारित्रमोहक का क्षयोपशम है या चारित्र मोहका उपशम है या चारित्रमोहका क्षय है। इसमें भाव सरगुणहोते होनेसे क्षयोपशमिक है किन्तु अवशिष्ट मोहके भी क्षयका यत्न है व अन्तमें अवशिष्ट सूक्ष्म लोभ का क्षय कर देता है अतः क्षायिक भाव है। उपशम श्रेणि में चढ़े हुए अंतरात्मा के सूक्ष्म लोभ के उपशमका यत्न है व अन्त में सूक्ष्म लोभका भी उपशम कर देता अतः औपशमिक भाव है।

इस गुणस्थानमें प्रतिसमय अपूर्व परिणाम होते हैं, समानसमयवर्तियों के समान परिणाम होते हैं और सूक्ष्म साम्परायचारित्रकी विशेषता रहती है

इस गुणस्थानमें १७ प्रकृतियोंका होता है - ज्ञानावरणकी, ५ अंतरायकी ५, चक्रुर्बर्शनावरणादि ४, यशस्कीर्ति, उच्चगोत्र, सातादेदनीय इन सत्रह प्रकृतियोंका वन्ध होता है।

इसगुणस्थानवर्ती जीवके उदय ६० प्रकृतियोंका है बादरसाम्परायान्त उदयव्युच्छिक ५+६+१×१७+८+५+४+६+६×५<sup>१</sup> तथा तीर्दंकर प्रकृति इन ६२ प्रकृतियों का उदय नहीं है।

सूक्ष्मसाम्परायमुख्यस्थानवर्ती जीवके सत्त्व १४६,

१४२, १३६ या १०२ का सत्त्व है। इस गुणस्थानमें साधु ३ प्रकारके हैं १-द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक , २ क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमक, ३— क्षायिकसम्यग्दृष्टि त्रिपक द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक भी दो प्रकार हैं अनंतानु-बंधीके उपशमक, २— अनंतानुबंधीके विसंयोजक। अनोपशमक द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक के ४६ का सत्त्व, है तिर्यगायु व नरकायुका सत्त्व नहीं है। अनविसंयोजक द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक के १४२का सत्त्व है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमकके १३६ का सत्त्व है इसके सम्यक्त्व-बाधक ७ प्रकृति तथा तिर्यगायु व नरकायु इन ६ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि त्रिपकके नव-मगुणस्थानव्युच्छित्त ३६ग्रन्थियाँ तथा तिर्यगायु, नरकायु, देवायु व सम्यक्त्वबाधक ७ प्रकृतियाँ इन ४६ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं होनेसे १०२ प्रकृतियोंका सत्त्व है।

सूक्ष्ममाम्यरायमंयत संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्ति होता है। इसके पर्याप्तियाँ ६, प्राण १०, संज्ञा ४, मनुष्यगति, ज्ञेन्द्रियजाति, त्रसकाय, योग ६, अपगतवेद, कषाय ? मंज्वलनसूलमलोभ, ज्ञान ४, सूक्ष्मसाम्परायसंयम, दर्शन ३, पुक्ललेशया, भव्यत्व, क्षायिक सम्यक्त्व या द्वितीयोपशम सम्यक्त्व , होते हैं।

इदंसाम्परायसंयत संज्ञी, आहारक, क्रमशः दोनों उपयोग

वाले, पृथ्वेवितर्कीचार शुक्लध्यानके ध्याता होते हैं। इसगुणस्थान मे आस्थ २ होते हैं। भाव २२ होते हैं एक जीवके २१-२०-१६-१८ होते हैं।

सूक्ष्मसाम्परायसंयतोंके देहकी अवगाहना कमसे कम ३॥ हाथ व अधिकसे अधिक ५२५ धनुषकी होती है।

इनका आवास ढाई द्वीपके भीतर ही है। क्षेत्र व स्थर्णन लोकका असंख्यातवां भाग है।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानका काल उपशमक नाना जीवोंकी ओक्ता कमसे कम एक समय व उत्कृष्ट अन्त-मुर्दूर्त है। एक जीव उपशमकका भी जघन्यकाल एक समय व उत्कृष्टकाल अन्तमुर्दूर्त है। क्षपक नाना जीवोंका व एक जीवका भी जघन्यकाल अन्तमुर्दूर्त है व उत्कृष्ट काल भी अन्तमुर्दूर्त है।

सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक एक जीवका अंतर नहां होता। नाना क्षपकों की ओक्ता जघन्य अन्तर एक समय व उत्कृष्ट अन्तर ६ माहका होता है। उपशमक नाना जीवोंमें जघन्य अंतर एक समय व उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। उपशमक पक जीवका जघन्य अंतर तो अन्तमुर्दूर्तका होता है और उत्कृष्ट अंतर २४ अन्तमुर्दूर्तकम अद्विद्वल परिवर्तन हो सकता है। इस में १० अन्तमुर्दूर्त अन्तर करण से पहिले के है व १४ अन्तमुर्दूर्त अंतर समाप्तिके पश्चात्।

शेष संसारके हैं ।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अंतिम समयमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन वातियाकर्मोंका स्थितिबंध अन्तमुहूर्त ही होता है । मोहनीयका बन्ध सूक्ष्मसाम्पराय में पहिले समयसे ही नहीं है । नाम व गोत्रकर्मका स्थिति-बंध १६ अन्तमुहूर्त रह जाता है । वेदनीयकर्मका स्थिति-बंध २४ मुहूर्त ही होता है । इसके पश्चात् मंज्वलन सूक्ष्मलोभका अभाव हो जाता है । उपशमश्रेणिवाले अन्तरात्मा के उसका उपशम होता है । क्षपक श्रेणिवाले के क्षयरूप अभाव होता है ।

उपशमकका दसवें गुणस्थानसे ६ वें या ११ वें गुणस्थानमें व अनंतर मरण होजाय तो चौथे गुणस्थान में जाना होता है । तथा दसवेंमें आना ६वें या ११ वें में से होता है ।

क्षपक दसवें गुणस्थानसे १२ वें गुणस्थानमें जाता है । और नवमें गुणस्थानसे दसवेंमें आता है ।

इसप्रकार सूक्ष्मसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक व क्षपकको बनाकर उपशान्तकषाय गुणस्थानको कहते हैं -

### उपशान्तकषाय गुणस्थान

जिनके सम्मतकषायें उपशान्त हो चुकी हैं उन्हें उपशा, न्तकषाय कहते हैं । दर्शनमोह ३ अनंतानुबंधीधका उपशम तो

श्रेणी चढ़नेसे ही पहिले हो गया था शेष काहे १० वें में हो गया इस प्रकार इनके समस्त मोहनीय कर्मका उपशम रहता है। इस गुणस्थानवर्ती जीवका नाम उपशान्तकषाय वीतराग छब्बस्थ है। ये जीव उपशान्तकषाय हैं, वीतराग हैं और छब्बकहिये ज्ञानावरण और दर्शनावरण इनमें स्थित हैं अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वदर्शी नहीं हैं।

इस गुणस्थानसे पहिले के सब गुणस्थान सराग छब्बस्थ कहलाते हैं। क्योंकि पूर्वोक्त सब गुणस्थान कषाय के उदयकरि सहित हैं और असर्वज्ञ व असर्वदर्शी हैं।

उपशान्तकषाय गुणस्थानमें परिणाम कषायरहित होनेसे पूर्ण निर्भल हैं परन्तु कषायोंका उपशम करके ये परिणाम पाये हैं अतः उपशमका काल समाप्त होते ही नीचे दशवें गुणस्थानमें गिरना पड़ता है और दशवेंसे भी ६ वेंमें गिरता है इस परम्परासे ७ वें ६ वें तक तो गिरना ही पड़ता है आगे साधारण व्यवस्था है, चढ़ भी सकता व गिर भी सकता।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमक गिरता ही रहे तो चौथे गुणस्थान तक ही गिर सकता है, यह फिर क्षपहश्चेणी चढ़ कर निर्वाण प्राप्त कर सकता है यदिपक्षेणी न चढ़े और मरण करे तब देवगतिमें ही उत्पन्न होगा।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें यदि मरण हो तो वह भी

देवगतिमें ही उत्पन्न होगा । द्वितीयोपशम सम्यक्त्वके बाद या तो बेदक सम्यक्त्व पाकर चौथे पांचवें सातवेंमें आ करा है, या मिश्याइष्टि हो सकता है । किन्हीं आचार्यों के ध्यानसे वह सासादन गुणस्थानमें भी जा सकता है ।

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि ११ वें से क्रम क्रमसे गिर कर मातवें छठवें गुणस्थानमें पहुंचते हैं वहाँ यदि सँभल जावे तो क्षयोपशमसम्यक्त्व पाकर पश्चात् क्षायिक सम्यक्त्व इस करलेते हैं और क्षपक श्रेणी चढ़कर अन्तमें मांक प्राप्त कर लेते हैं ।

उपशान्त कषाय गुणस्थानके कालके बीचमें ही आयुका क्षय होजावे तो चौथे गुणस्थानमें गिरना पड़ता है ।

उपशान्तकषाय गुणस्थानमें आना केवल सूक्ष्मसाम्पराय उपशमकसे ही होता है । इस गुणस्थानसे जाना भी दसवें गुणस्थानमें होता है किन्तु मरणकी अपेक्षासे चौथे गुणरूपानमें जाना होता है ।

यह गुणस्थान चारित्रमोहके उपशमसे हुआ है अतः इसमें अप्यसमिक्षा भाव है और निमित्त मोहका है अर्थात् मोहका उपशम है ।

उपशान्त गुणस्थानसे गिरनेपर जैसे जैसे कार्यों से द्वा आ वैसे वैसे अब हीनपरिणाम होता चला जावेगा और स्थितिबन्ध आदि जिस जगह जितना होता था प्रायः

बैसा ही उस स्थान में होता चला जावेगा अर्धात् बंध आदि बढ़ता चला जावेगा । उपशान्तकषाय गुणस्थानमें जीव समाप्त एक सैनोपच्चेन्द्रिय पर्याप्ति, पर्याप्तियां ६, प्राण १०, अपगतसज्जता मनुष्यगति, पञ्चोन्द्रियजाति, त्रस-काय, योग, ६ में एकदा एक, अपगतवेदत्व, अकषायत्व, ज्ञान ४-३-२ में उपयोगसे एक, यथाख्यातचारित्र, दर्शन ३-२ में उपयोगसे एक, शुक्ललेश्या उपचारसे, भव्यत्व, क्षान्तिकसम्यक्त्व द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें एक, संज्ञित्व आहारक होते हैं ।

उपशान्तकषाय वीतराग छान्नस्थ अन्तरात्मा क्रमशः दोनों उपयोगवाले, पृथक्त्ववितर्कवीचारशुक्लध्यानके ध्याता होते हैं ।

इस गुणस्थानमें आश्रव ६ योग किन्तु एकदा एक, भाव २१ में २०-१६-१८-१७ होते हैं ।

इनके देहकी अवगाहना कमसे कम ३॥ ह्यथ व अधिकसे अधिक ५२५ धनुष तक की होती है ।

इनका आवास ढाई द्वीपके भीतर है । क्षेत्र स्पर्शन लोकका असंख्यातवां भाग है ।

उपशान्तकषाय गुणस्थानका समय जघन्यसे एक समय है व उत्कृष्ट अन्तमुर्हूर्त है ।

उपशान्तकषायगुणस्थानवर्ती जीव इस गुणस्थान

तो छोड़कर अन्य गुणस्थानोंमें जाँय और पुनः आगे इसी गुणस्थानमें पहुँचे तो इस दीचका अन्तर अर्थात् जितने समय कोई जीव इस गुणस्थान में न मिले वह अन्तर जघय तो एक समय है और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व है। एकजी-की अपेक्षा अन्तर जघन्य तो अन्तमुर्हूर्त है और उत्कृष्ट २० अन्तमुर्हूर्त कम अद्विद्वलपरिवर्तन काल है। इसमें ६ अन्तमुर्हूर्त तो अन्तरसे पहिले इस गुणस्थानको पीछे प्राप्त करनेमें लगे थे और उत्कृष्ट अन्तर करने के शात् जब वह उस गुणस्थानको प्राप्त कर लेता है तब नेवर्ण पाने में १३ अन्तमुर्हूर्त और लगते हैं सो इन २२ प्रन्तमुर्हूर्तोंसे कम अद्विद्वलपरिवर्तनकाल उत्कृष्ट अन्तर गोता है।

इस गुणस्थानमें बंध केवल सातावेदनीय का है इसकी स्थिति कषाय न होने के कारण एक समयकी है अर्थात् उसका आस्ववमात्र है।

इस गुणस्थानमें उदय ५९ प्रकृतियोंका है सराग युच्चिक्षम ६२ व तीर्थकर प्रकृति इन ६३ का उदय नहीं है

इस गुणस्थानमें सत्त्व १४६, १४२, व १३६ का है योंकि इसमें अनोपशामक द्वितीयोपशमसम्यग्वृष्टि उपशम-, अनविसंयोजक द्वितीयोपशमसम्यग्वृष्टि उपशमक व नायिक सम्यग्वृष्टि उपशमक जीव होते हैं, नायिकसम्यग-

## क्षीणकषाय

इष्टि क्षपक नहीं होते हैं ये दशवें तक हो थे और वहाँसे १२वें गुणस्थानमें पहुँचते हैं।

इस प्रकार उपशान्त कषाय गुणस्थानका वर्णन करके अग्र क्षीणकषायनामक वारहवें गुणस्थानका वर्णन करते हैं—

## क्षीणकषाय

जहाँ समस्तकषायोंका क्षय हो चुका है उन निर्मल परिणामोंको क्षीणकषाय गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थानवर्ती जीवका नाम क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ है कषायों का क्षय दशवें क्षपक गुणस्थानके अन्तमें हो चुका था अतः यह क्षीणकषाय है, रागद्वेषादि भावों से पृथक् है अत्यन्त निर्मल है किन्तु इनावरण दर्शनावरण कर्मका क्षय न होने से छद्मस्थ है, अभी सर्वज्ञ व सर्वदर्शी नहीं है।

इस गुणस्थानसे पहिलेके सभी अर्थात् ग्यारहों गुणस्थानवर्ती जीव छद्मस्थ हैं।

यह गुणस्थान चारित्रमोहके क्षयसे प्रकट हुआ है अतः इसमें क्षायिक भाव है व निमित्त मोहका है अर्थात् मोहका क्षय है।

इस गुणस्थानमें बंध केवल सातावेदनीयका है इस

की स्थिति एक समयकी है अथवा इसका ईर्यापथ आस्त्र है

इस गुणस्थानमें उदय ५७ प्रकृतियों का है क्योंकि सरागव्युच्छिक्षण ६२ प्रकृति व बज्जनाराचसंहनन, नारायसंहनन और तोर्थकर प्रकृति इन ६५ प्रकृतियों का उदय नहीं है तथा अन्त समय में ५५ प्रकृतियों का उदय है क्योंकि इस गुणस्थानमें उपात्य समय निद्रामें व प्रचला की भी उदयव्युच्छिक्षण हो जाती हैं ।

इस गुणस्थानमें सत्त्व १०१ प्रकृतियोंका हैं क्योंकि अनिवार्तिकरणव्युच्छिक्षण ६६ प्रकृति व सूक्ष्मसम्पराशव्युच्छिक्षण संज्वलनलोभ व नरकाय, तिर्यगायु, देवायु, एवं सम्यक्तव्यबाधक ७ प्रकृति इन ४७ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है । तथा अन्तिमसमयमें ६६ प्रकृतियोंका सत्त्व है क्योंकि उपान्तसमयमें निद्रा व प्रचलाकी व्युच्छिक्षण हो जाती है

क्षीणकषाय वीतराग छवस्य उत्कृष्टोत्कृष्ट अन्तरात्मा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इनका स्थिति सत्त्व अन्तर्मुदूर्त करते हैं इसके बर्मोंका रिधि, बंध व अनुभागबंध नहीं है केवल एक समयस्थितिक ईर्यापथ आस्त्र व केवल सतावेदनीय प्रकृतिका है ।

इस गुणस्थानमें संज्ञीपञ्चेन्द्रिय पर्यास ही होते हैं । इनके प्रर्यासयां ६, प्राण १०, अपगतसंज्वल, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, योग ६ में एकदा एक, अप-

गतवेदत्व, अकषायत्व, इन ४-३-२ में उपयोगसे एक यथाख्यातचारित्र, दर्शन ३-२ में उपयोग से एक, उपचारसे शुक्ललेश्या, भव्यत्व, क्षायिक सम्यक्त्व होते हैं।

क्षीणकषायगुणस्थानवर्तीं जीव मंज्ञी, आहारक, क्रमशः दोनों उपयोगवाले होते हैं।

इनके प्रवेशके समयसे कुछ समय तक तो पृथक्त्व वितर्क वीचार शुक्लध्यान होता है पश्चात् एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यान होता है और अन्ततक यही एक द्वितीय शुक्लध्यान रहता है। एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानमें ये जिस योग व जिस जल्पसे जिस अर्धका ज्ञान करते हैं उसी प्रकार ध्यान रहता है उसके समाप्त होते ही केवलज्ञान उत्पन्न होता है। भावमन भी नष्ट होजाता है।

इस गुणस्थानमें होनेवाले अन्तरात्मावोंका आवास ढाई द्वीप के अन्दर है। केत्र व स्पर्शन लोकका असंख्यात्वां भाग है।

क्षीणकषायगुणरथान का जघन्य व उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इस गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा तो अन्तर है नहीं, क्योंकि इस गुणस्थानके पश्चात् वह जीव १३बें व पुनः १४वाँ गुणस्थान पाकर नियमसे निर्वाणको प्राप्त होगा, पुनः इस गुणस्थानमें आना संभव ही नहीं। किन्तु नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर हैं अर्थात् ऐसा

लगातार कुछ समय होता है जब कि एक भी जीव क्षीणकषाय गुणस्थानमें नहीं है। वह अन्तर काल जवन्यसे तो एक समय है और अधिकसे अधिक ६ माह है।

क्षीणकषाय गुणस्थानके अन्तिम समय में यह कृतकरणीय कहलाने लगता है और उस समय ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण शेषके ४ व अन्तगय ५ इनके उदयकी व सत्त्वकी एक साथ व्युच्छिति कर देता है

इस प्रकार क्षीणकषाय गुणस्थानका कुछ वर्णन करके अब सयोग केवली गुणस्थान की महिमा प्रकट करते हैं—

### सयोगकेवली

चारों धातियां कर्मोंके क्षय होते ही वे अन्तरात्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्सुख एवं अनन्तशक्ति इम शिव चतुष्यसे संपन्न जिनेन्द्र, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अरहंत, सकलपरमात्मा, समुण्डवृक्ष आदि नामों से संज्ञित ईश्वर हो जाते हैं। इनके जबतक योग रहता है तब तक सयोगकेवली कहलाते हैं। इस गुणस्थानसे पहिलेके सभी गुणस्थानवर्ती सयोगी हैं किन्तु छापस्थ हैं।

भव्यजीवों के भाग्यके निमित्तसे इनका विहार होता रहता है। ये इस पृथ्वीतलसे ५००० घनुष ऊपर रहते हैं ये औपचारिक कारणोंसे २ प्रकारके होते हैं १

तीर्थकरकेवली, २ सामान्यकेवली । तीर्थकरकेवलीके सम-  
वशरण होता है, सामान्य केवलीके गन्धकुटीकी रचना  
होती है । यह सब इन्द्रकी आज्ञासे कुवेर ऋद्धिकी  
विषेशतासे अन्तमुहूर्तमें कर देता है ।

सयोगकेवली भगवान की दिव्यध्वनि द्वारा भव्य  
जीवों को उपदेश प्राप्त होता है । ये मूल ग्रन्थकर्ता कहलाते हैं । इनकी दिव्यध्वनि निरक्षरी अर्थात् अक्षररहित या  
मर्व अक्षररसहित होती है । जिसके निमित्तसे जीव अपनी  
योग्यतानुसार तत्त्व प्राप्त करते हैं । गणधर देव द्वादशाङ्क  
की रचना करते हैं । गणधर देव चार ज्ञानके धारी हैं  
भी उनकी कृति अवश्य प्रमाणबूत है, साथ ही वह कृति  
मर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनिके निमित्तसे हुई है प्रामाणिकता  
की अमोघ पूर्णि सिद्ध है ।

जिनेन्द्रदेवका ज्ञान केवल ज्ञान है अन्यनिमित्तोंकी  
इन्द्रियादिकी महायतासे रहित आत्मीय अनन्तशक्तिसे  
प्रकट हुआ पूर्ण ज्ञान है ।

जिनेन्द्रदेवके जन्म, जरा, तृष्णा, जुधा, विस्मय,  
आतिं, खेद, रोग, शोक, मद, मोह, भय, निद्रा, चिन्ता,  
स्वेद, राग, द्वेष, और मरण ये अठारह दोष नहीं होते  
हैं । आयु का अन्त होनेपर इनका निर्वाण होगा ।

सयोगकेवली होते ही इनका औदारिक शरीर परमौ-

दारिक हो जाता है— धातुदोषरहित पुष्ट शरीर हो जाता है। इनके नख और केश नहीं बढ़ते हैं। ये कबला-हार नहीं करते हैं, इन्हें स्नातकनामक निर्ग्रन्थ भी कहते हैं।

सयोगकेवलीके केवल सातावेदनीयका ईर्यापथ आस्त्रव होता है। उदय सातावेदनीयका रहता है, असातावेदनीयका भी सच्च हो तो वह उदयमें सातारूप परिणाम जाता है किन्तु भगवानको मुख सातावेदनीयके उदयके निमित्त से नहीं है। उनका सुख आत्मीय सहज शाश्वत अनन्त है। वेदनीयके अतिरिक्त ४१ प्रकृतियोंका भी उदय रहता है छग्नस्थान्त उदय व्युच्छिन्नद० प्रकृतियोंका उदय नहीं है। तीर्थ करप्रकृतिका इस गुणस्थानमें उदय होता है। जिन अन्तरात्माओंने तीर्थकर प्रकृतिका बंध नहीं किया था उनके तीर्थकर प्रकृतिका उदय नहीं होता। परमात्माके तीर्थकर प्रकृतिका उदय हो या न हो इससे उनके स्वरूपमें सुखमें माहात्म्यमें कोई अन्तर नहीं आता। जिन्होंने तीर्थकर प्रकृतिका बंध नहीं किया, उनके इस गुणस्थानमें व अन्य सभी गुणस्थानों में तीर्थकर प्रकृतिका सच्च नहीं होता।

सयोगकेवली, तीर्थकरकेवली, सामान्यकेवली, मूक-केवली, अन्तकृत्केवली, समुद्घातकेवली, उपसर्गसिद्धकेवली आदि अनेक प्रकार हैं परन्तु इन प्रकारोंसे उनके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता।

सयोगकेवली, जिनेन्द्रके ८५ प्रकृतियोंकी सत्ता है इनमें अनिवृत्तिकरणव्युच्छिभ ३६, सूक्ष्मसाम्प्रशयव्युच्छिभ १, क्षीणकषायव्युच्छिभ १६ तथा नरकायु तिर्यगायु देवायु एवं अनंतानुबंधी ४३ दर्शनमोहकी ३ इन ६३ प्रकृतियों का सत्त्व नहीं है। इस गुणस्थानमें जीवसमास सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्ति हैं। ये जीव सैनी नहीं रहे, ये सैनी असैनीपन से रहित हैं, फिर भी द्रव्येन्द्रिय पांचों होने तथा पर्याप्ति होनेसे यह जीवसमास कहा गया। पर्याप्तियाँ ६, प्राणवचनवल कायवल आयु व उछ्वास ये ४, बादरयोगका निरोध होने पर कायवल आयुये २ प्राण होते हैं।

सयोगकेवली जिनेन्द्रके अपगतसंज्ञत्व, मनुष्यगति. पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, योग ४-३-२ में एकदा एक, अपगतरेत्तर, अकषायत्व, ज्ञान केवलज्ञान, यथारूपाचारित्र केवलदर्शन, उपचारसे शुक्ललेश्या, भव्यत्व, क्षायिक-सम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहारक, युगपत् दोनोंउपयोग, अन्तमें सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान, ईर्यापथआस्त्रव१, भाव १४ होते हैं।

सयोगकेवलीका आवास ढाई द्वीपके भीतर है। क्षेत्र व स्पर्शन लोकका असंख्यातवां भाग, लोकके असंख्यात वहुभाग व सर्वलोक है। इतना बड़ा क्षेत्र होनेका हेतु समुद्रात है, जिसका वर्णन आगे करेंगे।

सयोगकेवली गुणस्थानका काल नानाजीवों की अपेक्षा सर्वकाल है इसीलिये इनका अन्तरकाल भी नहीं है अर्थात् ऐसा समय न हुआ न होगा जब कि सयोगकेवली कोई न हो अर्थात् सयोगकेवली सदा होते हैं । एक जीवकी अनेक भी सयोगकेवली का अंतर नहीं है । क्योंकि वह निर्वाणही पावेगा सयोगकेवली पुनः बनना असंभव है । एक जीवकी अनेक काल जघन्य तो अन्तर्मुर्दूर्त है और उत्कृष्टकाल गर्भदिन, द वर्ष = अन्तर्मुर्दूर्तकम् १ करोड़ पूर्व वर्ष प्रमाण है ।

इन्द्र अनेक शोभावों सहित अन्यरानावोंके अतिरिक्त = प्रतिहार्योंको रवयं नियुक्तवर अपनेको धन्य समझता है । वे आठ प्रतिहार्य ये हैं—अशोकवृद्ध, मिहासन, तीनछव्र, गामिङ्गल, दिव्यध्वनिका प्रसार, पुष्पवृष्टि, ६४ यज्ञोद्घारा १४ चमरोंका डुलना, दुंदुभिनाद ।

जहाँ प्रभु होते हैं वहाँ चारों तरफ १००—१०० ऊंच तक दुर्भिक्ष पीड़ा रोग नहीं रहता व क्षेमकी वृद्धि । ज्ञाती है । प्रशुका गमन आकाशमें ही ऊपर होता है । तमें राग द्वेषका अन्यन्त अभाव है । इनपर कोई उपसर्ग हों कर सकता । इनके कवलाहार नहीं है, शरीरके उत्तम भाग शरीर में आते रहते हैं अतः नोकमहार ही है । प्रस्तविद्यावों के ईश्वर ये प्रभु है ।

नहीं बढ़ते हैं। इनके आंखकी पलक बंद नहीं होती है किन्तु सौम्यदण्ठिको लिये हुए पलक स्थिर रहते हैं।

इनके उपदेश, दर्शन, विहारसे अनेक भव्यजीवों को आत्मलाभ होता है। ये मोक्षमार्गके नेता कहे जाते हैं। आयुके अन्तके कुछदिन शेष रहजाने पर इनका विहार व उपदेश दंद होजाता है।

सयोग केवलीकी आयु जब अन्तमुर्हृत शेष रहजाती है तब जो जो रिथतियां होती हैं उनका वर्णन क्रमशः करते हैं। इम अन्तमुर्हृत में कई अन्तमुर्हृत गमित हैं।

१—सयोगकेवली द समयमें केवलिसमुद्घात करते हैं। आयुकर्मक्षीस्थिति तो कम हो व शेष तीन अधातिया कर्मोंकी स्थिति अधिक हो तो अधातिया कर्मोंकी स्थिति आयुके समान करनेकेलिये यह केवलिसमुद्घात होता है। मूलशरीरको न छोड़कर आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर फैल जानेको समुद्घात कहते हैं व केवलीके समुद्घातको केवलिसमुद्घात कहते हैं। प्रथम समयमें दण्डसमुद्घात करते हैं इसमें सयोगकेवलीके आत्मप्रदेश कुछकम १४ राजू नीचे-से ऊपर दण्डाकार फैल जाते हैं सो यदि केवली भगवान् पूर्वाभिमुख या उच्चराभिमुख कायोन्मर्गस्त्रिनसे हों तो शरीर प्रमाण बाहल्य (घेर) लेकर आत्मप्रदेश कुछ कम १४ राजू नीचेसे ऊचे फैल जावेंगे और यदि भगवान् पूर्वाभिमुख

f उत्तरमिमुख पश्चासनसे हों तो शरीरप्रमाणसे तिगुने वाह्यको लेकर कुछ कम १४ राजू प्रमाण फैल जावेगे ह सद एक समयमें होजाता है।

इस समयमें आयुको छोड़कर तीन अघातियों कर्मों नी स्थितिके असंख्यात बहुभाग नष्ट होजाते हैं और अवशिष्ट अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनन्त बहुभाग नष्ट हो जाते हैं।

कपाट समुद्रातमें आत्मप्रदेश लम्बाईमें तो समुद्रात-  
नी तरह रहेंगे किन्तु चौड़ाईमें यदि पूर्वाभिमुख केवली हैं  
तो दक्षिण उत्तर दिशामें उतने वाह्य (मोटाई) लिये हुए  
वर्ष्ट्र ७-७ राजू प्रमाण वातवलयको छोड़कर फैल जाते हैं  
यदि केवली उत्तराभिमुख हों तो दण्ड समुद्रातके वाह्यको  
कर पूर्व पश्चिममें वातवलयको छोड़कर जहाँ जितनाव्यास  
उतने प्रमाण फैलजाते हैं। इसमें भी एक समय लगता  
इस कपाट समुद्रातमें औदारिक मिश्रकायोग होता है  
स सययमें तीन अघातियोंकी अवशिष्ट स्थितिके असंख्या-  
बहुभाग नष्ट होजाते हैं, अप्रशस्त प्रकृतियोंके अवशिष्ट  
नुभागके अनन्त बहुभाग नष्ट होजाते हैं।

इसके अनंतर प्रतरसमुद्रात होता है इसमें आत्मप्रदेश  
वातवलयोंको छोड़कर सर्वत्र लोकमें फैलजाते हैं। इसका  
सुरा नाम मंथसमुद्रात भी है। फैलनेकी मुख्यतासे प्रत-

रनाम है और अधातिया कर्मोंके मंथनकी मुख्यतासे मथनाम पड़ा है। इसमें भी एक समय लगता है। इस समयमें तीन अधातियोंकी भी अवशिष्ट स्थितिके असंख्यात बहुभाग नष्ट होजाते हैं। और अप्रशस्तप्रकृतियोंके अवशिष्ट अनुभागके अनन्त बहुभाग नष्ट होजाते हैं। इसमें कार्मणकाययोग होता है।

इसके अन्तर लोकपूरणसमुद्घात होता है इसमें योग-की एक वर्गणा हो जाती है अर्थात् लोककाशके एक एक प्रदेशपर एक एक आत्मप्रदेश हो जाता है। वातवालयोंमें आत्मप्रदेश इस समुद्घातमें पहुंचते हैं। इसमें एक समय रहता है। इस समयमें तीन अधातियोंकी अवशिष्ट स्थिति के असंख्यात बहुभाग नष्ट होजाते हैं। यहां भी कार्मण-का योग रहता है। इस समय तीनों अधातियां कर्मोंकी स्थिति आयुसे मात्र संख्यात गुणे अन्तमुर्हृतं प्रमाण रह जाती है।

इसके पश्चात् आत्मप्रदेशोंका क्रमशः प्रतरसमुद्घात, दण्डसमुद्घात व मूलशरीरप्रवेश होता। है उत्तरते समयके समुद्घातोंमें तीन अधातियोंकी अवशिष्ट स्थितिके संख्यात बहुभाग नष्ट हो जाते हैं तथा शेष अनुभागके अनन्त बहु-भाग नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार केवलिसमुद्घातमें ८ समय लगते हैं-

। दण्डसमुद्घातमें २ कपाटसमुद्घातमें, ३ प्रतरसमुद्घातमें,  
४ लोकपूरणसमुद्घातमें, ५ प्रतरसमुद्घातमें, ६ कपाटसमु-  
द्घातमें, ७ दण्डसमुद्घातमें, ८ मूलशरीरप्रवेशमें । इस केव-  
लसमुद्घात द्वारा तीन अधातिया कर्मोंकी स्थिति प्रायः  
मान हो जाती है, अल्प ही अन्तर रह जाता है ।

२— इसके पश्चात् अन्तमुहूर्त जाकर वादरकाययोग  
रा वादरमनोयोगका निरोध हो जाता है । जिन केवलि-  
के समुद्घात नहीं होता है उनके भी इतना ही समय  
योगकेवलिगुणस्थानका शेष रहनेपर योगनिरोधकी इस  
याका प्रारंभ होजाता है ।

३-अन्तमुहूर्त पश्चात् वादरकाययोगद्वारा वादर बचन  
एका निरोध होजाता है ।

४— अन्तमुहूर्त पश्चात् वादरकाययोगद्वारा वादर  
सोछ्वासका निरोध होजाता है ।

५— अन्तमुहूर्त पश्चात् वादरकाययोगसे वादर-  
योगका निरोधहोजाता है । जैसे काठ चीरनेवाला  
काठपर खड़े होकर काठ चीरता है । अथवा सूक्ष्म-  
योग द्वारा वादरकाययोगका निरोध करता है ।

६— अन्तमुहूर्त पश्चात् सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्ममनो-  
ष्टा निरोध करता है ।

७— अन्तमुहूर्त पश्चात् सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्म-

चनयोगका निरोध करता है ।

८— अन्तमुहूर्त पश्चात् सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्म श्वारोज्ज्वासका निरोध करता है ।

९— अन्तमुहूर्त पश्चात् सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्मकाययोगका निरोध करता है ।

इस अन्तमुहूर्त अपकर्णण द्वारा पूर्वस्पद्धकसे अपूर्वस्पद्धक, पुनः कृष्टियोंको । असंख्यातगुणितश्रेणिसे करता है । कृष्टिकरण समाप्त होनेपर पूर्वस्पद्धक और अपूर्वस्पद्धकनष्ट हो जाते हैं, पश्चात् कृष्टिगतयोगवाला होता है । कृष्टिगतयोगके समय सयोगकेवली भगवान् के सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्ल ध्यान होता है, जिससे कृष्टियोंके असंख्यात् बहुभाग नष्ट होते हैं और अन्तमें योगका निरोध हो जाता है इस समयमें नामकर्म, गोत्रकर्म व वेदनीय ये तीनों अधातियां आयुकर्मके समान होजाते हैं । यह समय सयोगकेवली का अन्तिम समय है । अन्तिम समयमें योगका पूर्ण सर्वथा निरोध, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यानका व्युच्छेद व तीनों अधातियाकर्मोंका आयुकर्म के पूर्ण समान हो जा ये तीनों वातें एक साथ होती हैं ।

यहगुणस्थान समस्त मोहके क्षयके पश्चात् होनेवाले शेष तीन धातियाकर्मोंके क्षयसे प्रकट होता है अतः इसमें भावक्षायिक भावहै परन्तु नाम पड़नेमें निमित्त योगहै अर्थात् यहाँ वीतराग सर्वज्ञ होते हए भी जहाँ तक योगका सद्भाव

हता तहाँ तक सयोगकेवली कहलाते हैं ।

इस प्राचार सयोगकेवलीका निरूपन अब अयोग केवला गुणस्थानक सम्बन्धमें कहते हैं—

### अयोगकेवली

योगके नष्ट होते ही ये केवलज्ञानी सकल परमाप्ता अयोगकेवली कहलाते हैं शरीरके क्षेत्रमें रहते हुए भी नके प्रदेशोंका शरीरसे वह सम्बन्ध नहीं रहता क्योंकि उदयका विनाश सयोगकेवली गुणस्थानके अन्तमें होजाता है ।

समस्तधातिया कर्मोंके क्षय होजानेसे तथा अतिशीघ्र ही धातिया कर्मोंके नाशकरनेवाले होनेसे इनके क्षायिक भाव ता है । किन्तु इस गुणस्थानके नाम होने का तिमित योग अर्थात् योगका अभाव है ।

अयोगकेवली गुणस्थानमें ईर्यापथ आस्त्र भी नहीं ता है उदय १२ प्रकृतियों का है १ बेदनीयकी, २ मनु-प्रगति, ३ पञ्चेन्द्रियजाति, ४ सुभग, ५ त्रस, ३ वादर, १ प्रत्येक, ८ आदेय, ६ यशःकीर्ति, १० तीर्थकरप्रकृति, १ मनुष्यायु, १२ उच्चगोत्र । जिनके तीर्थकरप्रकृतिका बंध हीं था उनके ११ प्रकृतिका ही उदय गहता है ।

इस गुणस्थानमें सन्त्व ८५ प्रकृतियोंका ही होता है औ जिनके तीर्थकरप्रकृतिका बंध नहीं किया था उनके ८४

कृतियों का ही सच्च रहता है एवं जिन्होंने आहारकद्विक । तीर्थकर प्रकृति इन तीनों का बंध नहीं किया था उनके २२ प्रकृतियोंका ही सच्च रहता है और जिन्होंने आहारक द्वेकका ही बंध नहीं किया था उनके ८३ प्रकृतियोंका सच्च रहता है किन्तु अन्तिम समयमें तीर्थकरप्रकृतिबंध वालोंके १३ व शेषके १२ प्रकृतियोंका सच्च रहता है जिसके व्युच्छेदके पश्चात् वे सिद्ध परमेष्ठी होजाते हैं । उक्त ८५ प्रकृतियोंमें ७२ का तो अयोग केवली गुणस्थानके उपान्त्य समयमें नाश होता है और अवशिष्ट १३ प्रकृतियोंका अयोगकेवलीके अन्तसमयमें क्षय होता है । वे प्रकृतियाँ इसप्रकार हैं -

अपान्त्यसमयव्युच्छब्ध ७२ प्रकृतियाँ—शरीर पूँछबन५, संघात५, संस्थान६, संहनन ६, अङ्गोपाङ्ग३, स्पर्श८, रस ५, गंध २, वर्ण ५, स्थिर १, शुभ १, सुस्वर १, देवमति १, लक्ष्योपति २, अस्थिर १, अशुभ १, दुःखर १, दंवगत्यानुपूर्वी १, दुर्भग १, निर्माण १, अयशःकीर्ती १, अनादेय १, प्रत्येक १, अपर्याप्त १, अगुरुलघु १, उपधात १, परवात १, १, उच्छ्रवास १, वेदनीयकी अनुदयरूप १, नीचगोत्र १ ।

अयोगकेवलीके अन्तसमय समयमें सच्चव्युच्छब्ध १३ प्रकृतियाँ ये हैं— वेदनीयकी १, मनुष्यगति १,

पञ्चेन्द्रिय जाति १, सुभग १, त्रस १, वादर १, प्रत्येक १, आदेय १, यशःकोर्ति १, तीर्थकरप्रकृति १, मनुष्यायु १, उच्चगोत्र १ मनुष्यगत्यानुपूर्वी १ ।

अयोगकेवली भगवानके देहकी अवगाहना ३॥  
हाथसे ५२५ धनुषतक की हो सकती है । इसगुणस्थानमें  
जीवसमास सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होता है (इसमें वस्तुतः  
सैनी तो हैं नहीं, पञ्चेन्द्रिय द्रव्यकी अपेक्षा से हैं व पर्याप्त  
पहिले ही हो चुकेथे सो पर्याप्त देह जबतक रहता है पर्याप्त  
कहलाते हैं ) पर्याप्ति ३, प्राण १ आयु, अपगतसंज्ञत्व,  
मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय, त्रसकाय, अयोग, अपगतवेदत्व,  
अक्षाय, केवलज्ञान, यथाख्यातचारित्र, केवलदर्शन, अलेश्य  
भव्यत्व, क्षायिकसम्यक्त्व होते हैं ।

अयोगकेवली न संज्ञी हैं न असंज्ञी है, आहारक है  
युगपत् दोनों उपयोगवाले हैं ।

अयोगकेवली गुणस्थानमें ध्यान प्रथमसमयसे  
अन्तसमयतक व्युपरतक्रियानिवर्ती शुक्लध्यान है । इस  
ध्यानका इसरा नाम समुच्छिन्नक्रियानियर्ती भी है ।  
समस्त मन वचन काय योग शासोच्छवास नष्ट होजानेसे  
प्रदेशपरिस्पलक्रिया समुच्छिन्न अर्थात् व्युपरत याने निवृत्त  
होजाती है अतः इस ध्यानका नाम समुच्छिन्न क्रियानिवर्ती  
है । इस ध्यानमें एकाग्रचिन्तानिरोध नहीं होता है इसी

प्रकार १३ वें गुणस्थानमें होनेवाले द्वृच्छक्रियाप्रतिपाती ध्यानमें भी एकाग्रचिन्तानिरोध ध्यान नहीं है परन्तु ध्यान ता कार्य निर्जरा होनेसे ध्यान संज्ञा उपचारसे है ।

इस गुणस्थानमें आस्था कोई नहीं, भाव १३ होते हैं ।

अयोगकेवली भगवान् ढाई द्वीपके भीतर ही होते । इनका क्षेत्र, स्वर्ण लोकका असंख्यात्मां भाग है ।

इस गुणस्थानका काल अन्तमुहूर्त है अथवा शांच स्वस्वरोंके शीघ्र घोलनेमें जितना समय लगे उतना है ।

अयोगकेवली एक जीवका अन्तरकाल नहीं है । ताना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर अर्थात् ऐसा समय जब कि कोई भी जीव अपोग केवली गुणस्थानमें न हो वह काल ज्वन्यसे एकममय है व उत्कृष्ट ६ माह होता है ।

अयोगकेवली गुणस्थानका काल समाप्त होते ही अर्थात् व्यु परग्रक्रियानिवर्ती शुक्लध्यानका अन्त या अवशिष्ट सर्वकर्मक्षय होते ही अनन्तर गुणस्थानातीत सिद्ध हो जाते हैं ।

१४वें गुणस्थानवाले जीव अप्रमत्त एकस्वरूप वीतराग केवलज्ञानी अयोग ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि होते हैं ।

इस प्रकार १४वें गुणस्थानका वर्णन करके अब रमाराध्य परमसाध्य सर्वथा निर्लेपअवस्थाको प्राप्त गुणस्थानातीत सिद्धभगवान् का निरूपण करते हैं

## अतीतगुणस्थान

अतीत होगया है गुणस्थान जिनका उन्हें अतीत-गुणस्थान कहते हैं। सिद्धपरमेष्ठी गुणस्थानसे अतीतहैं अतःवे अतीतगुणस्थान कहलाते हैं, ये द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मसे रहित अनंतचतुष्टयसम्बन्ध सूक्ष्म, बाधारहित, अप्रतिधाती होते हैं। इनके देह तो है नहीं किन्तु जिस देहसे मुक्त हुए हैं कुछ कम उस देहके प्रमाण आत्माके प्रदेश हैं।

अवशिष्ट कर्मोंसे मुक्त होते ही अनंतर समयमें लोक के अन्तमें पहुंच जाते हैं बीचमें एक भी समय नहीं लगता। जिस स्थानसे मुक्त हुए हैं उसी स्थानकी सीधेके ऊपर लोकशिखरपर विराजमान रहते हैं। ये अत्यन्त निष्प्रकंप सर्वज्ञ सर्वदर्शी अनंतसुखी अनंतस्तथाप्तेःय होते हैं।

इस लोकके ऊपर भी ३ वातवलय है— घनोदधिवातवलय, २ घनवातवलय, ३ तनुवातवलय। वह घनोदधि-वातवलय २ कोशका मोटा है, घनवातवलय १ कोशका मोटा है, तनुवातवलय १५७५ घनुषप्रमाण मोटा है। यह तनुवातवलय दोनो वलयोंके ऊपर है यह, मोटाई प्रमाणाङ्गुलकी अपेक्षा है व्यवहाराङ्गुलकी अपेक्षा १५७५X५००=७८७५०० घनुष प्रमाण वाहन्य है इतने मोटे तनुवातवलयमें विलकुल ऊपर ३॥ हाथ मोटेमें जघन्य

अवगाहनावाले सिद्ध है और ४२५ धनुष मोटेर्से उत्कृष्ट अवगाहनावाले सिद्ध हैं ।

जो अयोगकेवली जिस आसनमें कर्मोंसे मुक्त हुए हैं उभी आसनके आकारसे सिद्धलोकमें विराजमान हो जाते हैं

अतीतगुणस्थातमें अतीतजीवसमाप्ति, अतीतपर्याप्ति, अतीतप्राण, अपगतसंज्ञ, गतिरहित, अतीतेन्द्रिय, अकाय, अयोग, अपगतवेद, अकषाय, केवलज्ञानी, संयम असंयम संयमासंयम तीनोंसे रहित, केवलदर्शनी, अलेश्य, भव्यत्व अभव्यत्व दोनोंसे राहेत, क्षायिक स्यगद्विष्टि. संज्ञी असंज्ञी दोनोंसे रहित, अनाहारक, युगपत दोनों उपयोगवाले, अतीतध्यान, निरास्त्रव होते हैं ।

अतीतगुणस्थानमें भाव क्षायिक ६ व जोवत्व ये १० होते - परन्तु अभेदविवक्षामें क्षायिकवीर्यमें शेष ४ लब्धियों व क्षायिक सम्यक्त्वमें चारित्रिका अन्तर्भाव है अतः ५ भाव प्रसिद्ध हैं ।

सिद्धकेव्र मनुष्यलोकप्रमाण ४५ लाख योजनप्रमाण मरुव्यलोककी सीधमें लोकके अन्तमें है । क्योंकि आत्मा मनुष्यलोकसे ही अतीतगुणस्थान होते हैं ।

लवणसमुद्रसे सिद्ध होनेवालोंकी संख्या सबसे कम है फिर भी अनंत है, उससे संख्यातगुणे सिद्ध कालोद समुद्रसे हुए, उससे संख्यातगुणे सिद्ध जम्बूदीपसे हुए, उससे

संख्यातगुणे सिद्ध धातकी खंडसे हुए, उससे संख्यातगुणे सिद्ध पुष्कराद्वद्वीपसे हुए हैं ।

तिर्यगति अनंतर मनुष्य होकर मुक्त होने वाले सब से कम है फिर भी ये अनंत है उससे संख्यातगुणे सिद्ध मनुष्यगतिके अनंतर मनुष्य होकर हुए हैं, उससे संख्यात-गुणे सिद्ध नरकगतिके अनंतर मनुष्य होकर हुए हैं, उससे संख्यातगुणे देवगतिके अनंतर मनुष्य होकर मुक्त हुए हैं ।

मतिज्ञान व श्रुतज्ञान इन दोनों ज्ञानके धारक साधु केवली होकर मोक्ष गये हैं, वे सबसे कम है, फिर भी अनंत हैं । उससे संख्यातगुणे मति श्रुत अवधि मनः पर्यय इन चार ज्ञानोंके धारी होकर पश्चात् केवली होकर मोक्ष गये । उनसे संख्यातगुणे मतिश्रुत अवधि इन तीन तानके धारी साधु केवली होकर मोक्ष गये हैं ।

यह सिद्ध अवस्था सर्वथा अत्यन्त निर्मल पूर्णसुख की पवित्र अवस्था है ज्ञानी आत्माओंकी अन्तिम पूर्ण विश्रामकी अवस्था वही है । इसकी प्राप्ति आत्मस्थिरता से होती है । आत्मस्थिरता सम्यग्दर्शनके अनुभवसे होती है । सम्यग्दर्शन आत्मस्वभावके परिचयसे प्रकट होता है । आत्मस्वभाव आत्माकी पर्यायोंमें गत है । जिसके परिणामन अनन्त होते चले जाते हैं फिर भी उनमें स्वभाव एक है जो परिणामता चला जाता है । इस आत्मस्वभावका

परिच्छय तत्त्वोंके भूतार्थनयसे जाननेपर होता है । इस पुस्तक में पर्यायोंका परिज्ञान किया गया है । वे पर्याय जिस गुणकी हैं उस गुणको मुख्य करके पर्यायोंको गुणोंमें लीन करना व गुणोंको गुणोंके अभिन्न आधाररूप अभेद आत्म-द्रव्यको लक्ष्य करके उसमें विलीन करना यही पुरुषार्थ है । इस उपायके पश्चात् निविकल्प होकर आत्मस्वभावको कारणरूपसे उपादान करके स्वयं परिणमते हुए केवल-ज्ञानमय उपयोगसे परिणमन कर अनन्त मुख्यी होवेगा ।

इस जीवनमें सम्यग्ज्ञानका प्रयत्न करना सबसे बड़ा व्यवसाय हैं । सभी ज्ञाता आत्माओंको संसार देह भोगसे विरक्त होकर आत्मामें स्थितिके लिये ज्ञाता द्रष्टा बने रहने-रूप पुरुषार्थ करना चाहिये ।

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्यश्री मनोहर जी वर्णो

“श्रीमत्सहजानन्द” महाराज

द्वारा प्रणीत गुणस्थानदर्पण समाप्त

## अपनी बातचीत

गुणस्थानदर्शणके रचयिता

ध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्रीमनोहरजी वर्णी

**“श्रीमत्महजानन्द” महाराज**

(द्वारा विरचित एक ट्रैक्ट)

अथि आत्मन् ! तू क्या है ? विचार ? ज्ञानमय दार्थ !! तेरा इन दृश्योंके साथ क्या कोइ सम्बन्ध है यथा-  
ं ? नहीं, नहीं, कुछ भी सम्बन्ध नहीं ! क्यों नहीं ? यों  
के कोई किसीका कुछ भी परिणामन कर नहीं सकता,, ।

मैं ज्ञानमय आत्मा हूँ, हूँ, स्वयं हूँ, इसलिये अनादि,  
मैं किसी दिन हुआ होऊँ पहिले न था यह बात नहीं।  
था तो फिर हो भी नहीं सकता ।

फिर ध्यान दे-इस भरजन्मसे पहिले तू था ही !  
था ? अनंतकाल तो निगोदिया । वहाँ क्या बीती ?  
एक सेकिरेंडमें २३बार पैदा हुआ और मरा । जीभ, नाक,  
गांख, कान, मन तो था ही नहीं और था शरीर । ज्ञानकी  
ओरसे देखो तो जड़सा रहा; महासंक्लेश ! न कुछसे बुरी  
शा । सुयोग हुआ तब उस दुर्दशासे निकला ।

पृथ्वी हुवा तो खोदा गया, कूटा गया, ताढ़ा गया,  
रुंगसे फोड़ा गया।

जल भी तो तू हुआ, तब औटाया गया. विलोरा,  
था गर्म आगपर डाला गया ।

अग्नि हुआ, तब पानीसे, रांखसे, धूलसे, बुझाया

गया, खुदेरा गया ।

वायु हुआ, तब पंखोंसे, बिजलियोंसे ताढ़ा गया,  
रबर आदिमें रोका गया ।

पेड़, फल, पत्र जब हुआ, तब...काटा, छेदा, भूना,  
सुखाया गया ।

कीड़े भी तुम्हीं बने और मच्छर, मक्खी, बिच्छू  
आदि भी ! बताओ कौन रक्षा कर सका ? रक्षा तो दूर  
रही, दवाइयाँ डाल डाल कर मारा गया, पत्थरोंसे जूतोंसे,  
खुरोंसे दबोचा व मारा गया ।

बैल, घोड़े, कुचे आदि भी तो तू हुआ । कैसे दुःख  
भोगे ? भूखे प्यासे रहे, ठंडों मरे, गर्मियों मरे, ऊपरसे  
चाबुक लगे, मारे गये ।

शूकर मारे जाते हैं चलते फिरतोंको छुरी भोक्कर । कहीं  
जिन्दा ही आगमें भूने जाते हैं ।

यह दूमरोंकी कथा नहीं, तेरी है । यह दशा क्यों हुई ?  
मोह बढ़ाये, कषाय किये, खाने, पीने, विषयोंकी धून रही,  
नाना कर्म बांधे, मिश्यात्व, अन्याय, अभक्ष्यसेवन किये ।  
बड़ी जटिलियोंसे यह मनुष्यजन्म मिला तब यहाँ भी मोह-  
राग द्वेष विषय कषायकी ही वात रही तब, जैसे मनुष्य  
हुए न हुए बराबर है ।

कभी ऐसा भी हुआ कि तूने देव होकर या राजा, सामाजिक,  
धन-पति होकर अनेक संपदा पाई परन्तु वह सभी संपदायें  
थीं तो असार और क्लेशकी कारण !! इवनेपर भी उन्हें

१०५

जीवकर मरना ही तो पढ़ा ?

जब तो प्राया ही क्या ? न कुछ । न इच्छाएँ व्यवही  
गिलसा रख कर कर्या अपनी सर्व हानि कर रहे हो ?

आत्मन् ! तू स्वभावसे ज्ञान-मय है, प्रश्न है, स्वतंत्र है,  
दृढ़ परमात्माकी जातिका है। क्या कर रहा ? उठ, चल  
जाने स्वरूपमें क्स ।

तू अकेला है, अकेला ही पुण्य-पाष करता, अकेला  
पुण्य-पाप भोगता; अकेला ही शुद्धस्वरूपकी मावना  
होता, अकेला ही मुक्त हो जाता ।

दृढ़, चेत, पर पर ही हैं परमें निजबुद्धि करना ही दुःख है,  
समें आत्मबुद्धि करना सुख है परम अमृत है ।

वह तू ही तो स्वय है । परकी आशा तज, अपनेमें  
न होनेकी धुन रख ।

सोच तो यहीं सोच— परमात्माका स्वरूप, उसकी  
इमें रह । लोगोंको सोच, तो उनका जैसे हित हो उस  
सोच ।

बोल तो यहीं बोल— परमात्माका गुण यान...  
मेरुतिसे रह लोगोंसे बोल, तो हित, मित,  
विनाश बोल ।

कर तो ऐसा कर जिसमें किसी ग्राहीका अहित  
, वात न हो । अपनी चर्या धार्मिक बनाओ ।

तू शुद्ध चैतन्य इच्छावी है, सहजभावका अनुभव कर  
जाप—“शुद्धचिद्वप्नेऽद्वय”

तिरमल्य





